वार्षिक रु. १३०, मूल्य रु. १५

विवेक ज्योति

वर्ष ५६ अंक ६ जून २०१८

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम
रायपुर (छ.ग.)

॥ आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च॥

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

जून २०१८

प्रबन्ध सम्पादक
स्वामी सत्यरूपानन्द

सम्पादक
स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक
स्वामी मेधजानन्द

व्यवस्थापक
स्वामी स्थिरानन्द

वर्ष ५६
अंक ६

वार्षिक १३०/– **एक प्रति १५/–**

५ वर्षों के लिये – रु. ६५०/–
१० वर्षों के लिए – रु. १३००/–
(सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाएँ
अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा कराएँ :
सेन्ट्रल बैंक ऑफ इन्डिया, **अकाउन्ट नम्बर** : 1385116124
IFSC CODE : CBIN0280804
कृपया इसकी सूचना हमें तुरन्त केवल ई-मेल, फोन, एस.एम.एस., व्हाट्सएप अथवा स्कैन द्वारा ही अपना नाम, पूरा पता, **पिन कोड** एवं फोन नम्बर के साथ भेजें।
विदेशों में – वार्षिक ४० यू. एस. डॉलर;
५ वर्षो के लिए २०० यू. एस. डॉलर (हवाई डाक से)
संस्थाओं के लिये –
वार्षिक १७०/– ; ५ वर्षों के लिये – रु. ८५०/–

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,
रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)
विवेक-ज्योति दूरभाष : ०९८२७१ ९७५३५
ई-मेल : vivekjyotirkmraipur@gmail.com
वेबसाइट : www.rkmraipur.org
आश्रम : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९
(समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)
रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

अनुक्रमणिका

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

भगवान श्रीरामकृष्ण देव का यह भव्य मन्दिर रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, लखनऊ का है।

विवेक ज्योति के अंक ऑनलाइन पढ़ें : www.rkmraipur.org

विवेक-ज्योति स्थायी कोष

दान दाता	दान-राशि
श्री प्रवीण आर. दलाल, ताड़देव, मुम्बई	१०००/-
श्री जी. चन्द्रशेखर, माव रोड, चेन्नई	१०००/-
श्री आर.पी.सुखीजा, जलविहार कॉलोनी, रायपुर	५०००/-
श्री ए. के. डे, प्रियदर्शनी नगर, रायपुर (छ.ग.)	१०००/-

विवेक-ज्योति के सदस्य बनाएँ

प्रिय मित्र,

युगावतार श्रीरामकृष्ण और विश्ववन्द्य आचार्य स्वामी विवेकानन्द के आविर्भाव से विश्व-इतिहास के एक अभिनव युग का सूत्रपात हुआ है । इससे गत एक शताब्दी के दौरान भारतीय जन-जीवन की प्रत्येक विधा में एक नव-जीवन का संचार हो रहा है । राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर, ईसा, मुहम्मद, शंकराचार्य, चैतन्य, नानक तथा रामकृष्ण-विवेकानन्द, आदि कालजयी विभूतियों के जीवन और कार्य अल्पकालिक होते हुए भी शाश्वत प्रभावकारी एवं प्रेरक होते हैं और सहस्रों वर्षों तक कोटि-कोटि लोगों की आस्था, श्रद्धा तथा प्रेरणा के केन्द्र-बिन्दु बनकर विश्व का असीम कल्याण करते हैं । श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा नित्य उत्तरोत्तर व्यापक होती हुई, भारतवर्ष सहित सम्पूर्ण विश्ववासियों में परस्पर सद्भाव को अनुप्राणित कर रही है ।

भारत की सनातन वैदिक परम्परा, मध्यकालीन हिन्दू संस्कृति तथा श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द के सार्वजनीन उदार सन्देश का प्रचार-प्रसार करने के लिए स्वामीजी के जन्म-शताब्दी वर्ष १९६३ ई. से 'विवेक-ज्योति' पत्रिका को त्रैमासिक रूप में आरम्भ किया गया था, जो १९९९ से मासिक होकर गत ५६ वर्षों से निरन्तर प्रज्वलित रहकर यह 'ज्योति' भारत के कोने-कोने में बिखरे अपने सहस्रों प्रेमियों का हृदय आलोकित करती आ रही है । आज के संक्रमण-काल में, जब असहिष्णुता तथा कट्टरतावाद की आसुरी शक्तियाँ सुरसा के समान अपने मुख फैलाए पूरी विश्व-सभ्यता को निगल जाने के लिए आतुर हैं, इस 'युगधर्म' के प्रचार रूपी पुण्यकार्य में सहयोगी होकर इसे घर-घर पहुँचाने में क्या आप भी हमारा हाथ नहीं बँटायेंगे? आपसे हमारा हार्दिक अनुरोध है कि कम-से-कम पाँच नये सदस्यों को 'विवेक-ज्योति' परिवार में सम्मिलित कराने का संकल्प आप अवश्य लें । **— व्यवस्थापक**

क्रमांक	विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना के सहयोग कर्ता	प्राप्त-कर्ता (पुस्तकालय/संस्थान)
४७६.	श्री वी.जे. चौधरी, बक्सी बाजार, कटक ओडीशा)	संघ कार्यालय, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ बाबूटोला, बाँका,बिहार
४७७.	,, ,,	राजकीय माध्यमिक विद्यालय, कोट, जि.भरतपुर (राज)
४७८.	श्री आशीष कुमार बॅनर्जी, शंकरनगर, रायपुर (छ.ग.)	ए.ई.सी. ट्रेनिंग कॉलेज एंड सेंटर, पचमढ़ी (म.प्र.)
४७९.	डॉ. मनोज तिवारी, एनआईएफटी, जोधपुर (राज.)	रिसोर्स सेन्टर, एनआईएफटी, कारवार,जोधपुर (राज.)
४८०.	श्री ओमप्रकाश वर्मा, ग्रा/पो.-दुबारी, जि. मऊ (उ.प्र.)	इन्टर कॉलेज गाजियापुर, वाया -दुबारी, जि. मऊ (उ.प्र.)
४८१.	,, ,,	जेएसएन इंटर कॉलेज, ग्रा/पो.-दुबारी, जि. मऊ (उ.प्र.)
४८२.	श्री अनुराग,स्व. श्रीरामराज,स्व. श्रीमती उषा प्रसाद,कोलकाता	शा. पं.माधवराव सप्रे कन्या महाविद्यालय, पेण्ड्रा रोड (छ.ग.)
४८३.	,, ,,	गवर्नमेंट गर्ल्स कॉलेज, भोपाल नाका, सीहोर (म.प्र.)
४८४.	,, ,,	संतबाबा अत्तार सिंह गवर्नमेंट पॉलीटेक्नीक, बरनाला (पंजाब)
४८५.	,, ,,	गवर्नमेंट कॉलेज, ग्रा./पोस्ट-पुष्कर, जिला - अजमेर (राज.)
४८६.	,, ,,	जीवन ज्योति पॉलीटेक्नीक कॉलेज, जि.-फाजिल्का (पंजाब)

श्रीरामकृष्ण-वन्दना

परहितरतचेता यो महात्मा गतासु-
र्दिशि दिशि जनवृन्दा यं भजन्ति स्मरन्ति।
भुवि सुरगुरुकल्पं सर्वयोगेषु सिद्धं
निखिलमनुजबन्धुं रामकृष्णं नमामि।।

ललितसरलवाक्यं रम्यकान्तिं सुदृश्यं
कलुषरहितचित्तं शक्तिमन्तं विनम्रम्।
सततशमथपूर्णं ब्रह्मभावाभिमग्नं
निखिलमनुजबन्धुं रामकृष्णं नमामि।।

अगणितगुणिशिष्यैः सार्द्धमासीनमेनं
हितमितवचनाढ्यं जीवसिद्ध्यैः यतन्तम्।
कृतिमतिभजनानां विग्रहं मूर्तिमेकं
निखिलमनुजबन्धुं रामकृष्णं नमामि।।

कलिकलुषविनाशं कालिकाभक्तमीशं
त्रिभुवनभयनाशं मुक्तिवादानुरक्तम्।
भुवि पुनरवतीर्णं रामकृष्णास्यमादौ
निखिलमनुजबन्धुं रामकृष्णं नमामि।।

पुरखों की थाती

तीर्त्वा मोहार्णवं हत्वा राग-द्वेषादि-राक्षसान्।
शान्ति-सीता-समायुक्त आत्मारामो विराजते।।६०१

– आत्मा-रूपी राम, मोह-रूपी समुद्र को पार करके, राग-द्वेष-आदि राक्षसों को मारकर, शान्ति-रूपी सीता से युक्त होकर विराज करते हैं।

षट्कर्णो भिद्यते मन्त्रस्तथा प्राप्तश्च वार्तया ।
इत्यात्मना द्वितीयेन मन्त्रः कार्यो महीभृता ।।६०२।।

– कोई बात छह कानों में यानी तीसरे आदमी तक पहुँचते ही उसका भेद खुल जाता है। यही बाधा सन्देश भेजने में भी है। इसलिए राजा को चाहिए कि वह स्वयं ही अपने मन्त्री के साथ एकान्त में सलाह करे।

मधुसिक्तो निम्बखण्डः दुग्धपुष्टो भुजङ्गमः।
गङ्गा-स्नातोपि दुर्जनः स्वभावं नैव मुञ्चति।।६०३।।

– नीम की डण्ठल को मधु में डुबाकर रखा जाय, साँप को दूध पिलाकर पुष्ट किया जाय, दुष्ट व्यक्ति गंगाजी में स्नान कर ले, तो भी इनका (कटुता, क्रूरता तथा दुष्टता का) स्वभाव दूर नहीं होता।

स्वायत्तमेकान्तहितं विधात्रा
विनिर्मितं छादनमज्ञतायाः।
विषेशतः सर्वविदां समाजे
विभूषणं मौनमपण्डितानाम्।।६०४।।

– विधाता ब्रह्मा ने मूर्खों के कल्याणार्थ, उनकी मूर्खता को छिपाने के लिये, उनके अधिकार में रहनेवाला 'मौन' रूपी अत्यन्त हितकर गुण बनाया है, जो सर्वज्ञ विद्वानों की सभा में उनके लिये विशेष अलंकार सिद्ध होता है।

विविध भजन

भज मन बाल चन्द्र गदाई

स्वामी रामतत्त्वानन्द

भज मन बाल चन्द्र गदाई।
लेत जनम जो कौतुक किन्हा,
निज तन भसम लगाई।। भज मन...
अवध में नाचे अवध बिहारी,
ब्रज में बाल कन्हाई।
बंग गाँव में नाचे गदाधर,
निरखे चन्द्रा माई।। भज मन...
दूध खीर श्रीरामजी खावैं,
माखन बाल कन्हाई।
लाई चबेना गदाई खावै,
पक्षी देख बिखराई।। भज मन...
अवध गली में राम जी बिचरे,
ब्रज वीथी कन्हाई।
कामारपुकुर की पुण्य गली में,
बिचरे बाल गदाई।। भज मन...
अवधबासी श्रीराम निहारें,
ब्रजवासी कन्हाई।
कामारपुकुर के धन-जन पुरजन,
निरखे बाल गदाई।। भज मन...
तुलसीदास श्रीराम को ध्यावे,
सूरदास कन्हाई।
रामदास नित ध्यान लगावै,
चन्द्रा बाल गदाई।।

आनन्द रूप अपना

स्वामी राजेश्वरानन्द सरस्वती

संसार स्वप्न माया आनन्द रूप अपना।
गुरुदेव ने लखाया आनन्द रूप अपना।।
है पंचभूत निर्मित बनने बिगड़ने वाली।
यह नाशवान काया आनन्द रूप अपना।।
हालात के मुताबिक क्षण-क्षण में मन बदलता।
मुझमें न फर्क आया आनन्द रूप अपना।।
निश्चय हुआ मैं वो हूँ जिसको कि वेद चहुँ में
कह नेति नेति गाया आनन्द रूप अपना।।
आवे नहीं न जावे साक्षी सदा है स्थिर।
जावे वही जो आया आनन्द रूप अपना।।
यह ब्रह्म जीव ईश्वर मुझमें सभी है कल्पित।
सबमें ही मैं समाया आनन्द रूप अपना।।
आनन्द 'राजेश्वर' ने इस जिन्दगी में यारों।
सद्गुरु कृपा से पाया आनन्द रूप अपना।।

मन तोहे किहि बिध मैं समझाऊँ

कबीरदास

मन तोहे किहि बिध मैं समझाऊँ।।
सोना होय तो सुहाग मँगाऊँ, बंकनाल रस लाऊँ।
ग्यान सबद की फूँक चलाऊँ, पानी कर पिघलाऊँ।।
घोड़ा होय तो लगाम लगाऊँ, ऊपर जीन कसाऊँ।
होय सवार तेरे पर बैठूँ, चाबुक देके चलाऊँ।।
हाथी होय जंजीर गढ़ाऊँ, चारों पैर बधाऊँ।
होय महावत तेरे गर बैठूँ, अंकुश लेके चलाऊँ।।
लोहा होय तो ऐरण मगाऊँ, ऊपर धुवन धुवाऊँ।
धूवन की घनघोर मचाऊँ, जंतर पार खिंचाऊँ।।
ग्यानी न हो ग्यान सिखाऊँ, सत्य की राह चलाऊँ।
कहत कबीर सुनो भाई साधू अमरापुर पहुँचाऊँ।।

व्यक्तित्व-विकास – एक विश्लेषण

एक बार दो महात्मा एक कार्यक्रम में गये। मंच पर जाते समय एक सज्जन दौड़ते हुये आये। उन्होंने एक महात्मा से पूछा – "आप लोग कहाँ से आये हैं? सन्त ने अपने स्थान को बताया। सन्त ने पूछा, क्यों, क्या बात है, इतनी उत्सुकता से आप पूछ रहे हैं? उन्होंने कहा कि आप लोगों का व्यक्तित्व बड़ा महान दीख रहा है। सन्त ने पूछा, क्या आप हमलोगों के बारे में जानते हैं? उन्होंने कहा, नहीं। सन्त ने पूछा, बिना जाने-सुने आपने कैसे जान लिया कि हमारा व्यक्तित्व महान है? उन्होंने कहा कि गैरिक वस्त्र में स्वामीजी और श्वेत वस्त्र में ब्रह्मचारीजी बड़े अच्छे लग रहे हैं। उन सज्जन की दृष्टि में वस्त्र ही व्यक्तित्व का द्योतक था।

हमारे छात्रावास में कुछ वर्ष पहले एक लड़का था। वह बड़ा दुबला-पतला था। दो-चार महीने पहले एक दिन वह आश्रम में सबसे मिलने आया। उसे देखकर एक उसके पुराने मित्र ने कहा, महाराज इसकी पर्सनेलिटी (व्यक्तित्व) अभी भी ठीक नहीं हुई। हमने कहा, क्या हुआ? उसने कहा, यह अभी भी उतना ही दुबला है, जितना पहले था। उसकी दृष्टि में शरीर ही व्यक्तित्व का सूचक था।

वास्तव में व्यक्तित्व के सन्दर्भ में उपरोक्त दोनों विचार अपूर्ण हैं, अत्यांशिक सत्य हैं। व्यक्ति का व्यक्तित्व केवल उसके बाह्य वस्त्र, स्थूल शरीर पर ही निर्भर नहीं करता है । इसके लिये व्यक्ति और व्यक्तित्व क्या है, यह जानना आवश्यक है। आइये, बहुत संक्षेप और सरल ढंग से इस पर चर्चा करते हैं।

पाश्चात्य मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व के दो भाग स्वीकार किये हैं – बहिरंग और अन्तरंग। बहिरंग से उनका तात्पर्य स्थूल शरीर और उसके कार्यों से है और अन्तरंग से उनका तात्पर्य व्यक्ति के चरित्र-निर्माण में सहयोगी मानसिक, बौद्धिक चिन्तन और क्रियाओं से है।

व्यक्तित्व व्यक्ति से बना है। व्यक्ति का व्यक्तित्व होता है, इसलिये आइये, सबसे पहले हम भारतीय संस्कृति की पृष्ठभूमि में, उसकी आधारशिला पर खड़े होकर प्राच्य ऋषियों की छत्र-छाया में विचार करें कि हमारे मन-मस्तिष्क में व्यक्ति की क्या अवधारणा है?

बृहत् हिन्दी कोशकार व्यक्ति का अर्थ लिखते हैं – व्यक्ति = स्त्री. (सं.) व्यक्त, प्रकट होने की क्रिया, प्रकट रूप, स्पष्टता, लिंग, अन्तर करना, वास्तविक प्रकृति, पदार्थ, प्रकाश। पु. व्यष्टि, जन ।

इसमें व्यक्ति का एक अर्थ व्यक्त भी बताया गया है। कोशकार ने 'व्यक्त' का शब्दार्थ इस प्रकार किया है – व्यक्त = (पु.) प्रकट, विकसित, प्रत्यक्ष, स्पष्ट, दृश्य, चतुर, विद्वान मनुष्य, विष्णु, अव्यक्त का व्यक्त, स्थूल रूप, ग्यारह गणाधिपों में से एक।

इसमें कोशकार ने व्यक्त और व्यक्ति का अर्थ मनुष्य, जन भी किया है। यदि हम व्यक्ति का विश्लेषण करें, तो देखेंगे, व्यक्ति के साथ बहुत-सी चीजें जुड़ी हुई हैं। जैसे किसी व्यक्ति का शरीर होता है, उसका मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार होता है। सबसे बड़ी बात उसमें आत्मा होती है। उस आत्मा के कारण ही, उस चैतन्य शक्ति के कारण ही शरीर, मन, बुद्धि और अहंकार संचालित होते हैं। जितनी ही वह आत्मा अभिव्यक्त होती है, उतनी ही, उसके जीवन में प्रखरता, तेजस्विता, महान सद्गुणों का उद्गम होता है, जो उसके व्यक्तित्व को सुविकसित करते हैं।

एक बार एक चिकित्सक ने मुझसे पूछा – बताइये, चिकित्सक किसकी चिकित्सा करते हैं? मैंने कहा, चिकित्सक शरीर और मनोरोगों की चिकित्सा करते हैं। उन चिकित्सक ने कहा, नहीं, वे केवल शरीर और मन की चिकित्सा नहीं करते। वे आत्मस्थ शरीर-मन की चिकित्सा करते हैं। केवल शरीर तो शव है। तब उनकी यह सूक्ष्म बात हमें समझ में आयी। वास्तव में बिना शरीर के मन, बुद्धि आदि की धारणा कठिन है। इससे सिद्ध होता है कि व्यक्ति केवल शरीर, मन, बुद्धि, अहं, आत्मा ही नहीं, वह सबका मिश्रित रूप नहीं, सबका समन्वित रूप है। जब व्यक्ति के इतने घटक हैं, तो उसके व्यक्तित्व-विकास में इन सबका योगदान है। इन सबके सम्यक् सन्तुलित विकास से ही व्यक्तित्व का ठीक-ठीक विकास होता है।

अब प्रश्न उठता है कि व्यक्तित्व क्या है? यदि हम कोशकार की ही सहायता लें, तो व्यक्तित्व का अर्थ है –
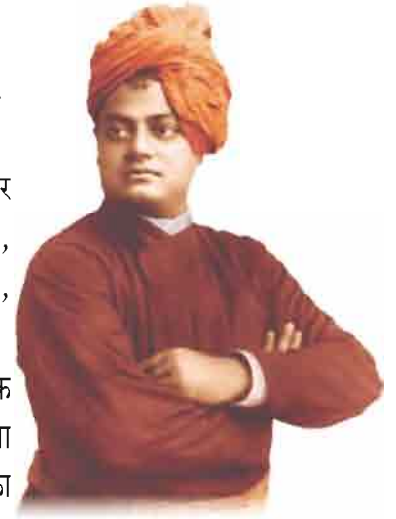
व्यक्ति की विशेषता, गुण, वह विशेषता, जो किसी व्यक्ति में असामान्य रूप से पायी जाय, व्यक्त होने का भाव।

व्यक्ति में निहित गुण, उसका वैशिष्ट्य, उसकी विलक्षणता व्यक्तित्व है। हम बार-बार पढ़ते और सुनते हैं – चरित्र-निर्माण और व्यक्तित्व-विकास। चाल-चलन, व्यवहार से चरित्र-निर्माण होता है, किन्तु व्यक्तित्व-विकास किया जाता है। व्यक्तित्व विकास के घटक पहले से ही व्यक्ति में विद्यमान हैं, केवल उसे यथोचित आयामों द्वारा सुविकसित करना है। व्यक्ति का प्रथम घटक शरीर है। जैसे-जैसे बच्चा बड़ा होता जाता है, उसके शरीर के सभी अंग यथोचित भोजन, पौष्टिक पदार्थ और व्यायाम के द्वारा विकसित होते हैं। ज्ञातव्य है कि वेदान्तानुसार मानव का स्थूल, सूक्ष्म, कारण शरीर भी होता है।

दूसरा घटक मन है। आत्मचैतन्य के सान्निध्य के कारण मन में भी अनन्त शक्ति है। वह कुछ भी करने में समर्थ है। स्वामी विवेकानन्द मन की एकाग्रता पर बहुत जोर देते थे। हमें लक्ष्य में अस्थिर, चंचल होकर बार-बार इधर-उधर व्यर्थ भटकने से मन को रोकना होगा। सारी शिक्षा मन को लक्ष्य में एकाग्र करने के लिये है। हमें मन को व्यर्थ के प्रलोभनों से हटाकर उसे लक्ष्य की दिशा में संचालित करना होगा, उसे सन्मार्ग में संयुक्त करना होगा। एकाग्रता से मन तीक्ष्ण और सूक्ष्मग्राही होकर असीमित शक्तिशाली हो जाता है, जो हमारे जीवन की सफलता में परम आवश्यक है। अत: मानसिक विकास व्यक्तित्व-विकास का महत्त्वपूर्ण अंग है, जिसका ठीक-ठीक विकास करने की हमें कला आनी चाहिये।

व्यक्तित्व विकास का तीसरा घटक बुद्धि है। मानव के जन्म के समय बुद्धि अविकसित रहती है। बाद में माता-पिता, परिजन, शिक्षक और समाज के द्वारा विभिन्न आयामों से बुद्धि का विकास किया जाता है। बुद्धि पथ-प्रदर्शिका है। शुद्ध बुद्धि हमारे व्यक्तित्व विकास में अधिक सहयोगी होती है। सच्चिन्तन और सद्विचारों से बुद्धि शुद्ध और विकसित होती है। उसका आलोक मन पर पड़ता है और मन ग्रहणशील होता है, सन्मार्ग पर, निर्दिष्ट लक्ष्य की ओर अग्रसर होता है। व्यक्तित्व के विकास में विमल बुद्धि का विकास अपरिहार्य है। हमें व्यक्तित्व विकास में सहयोगी अच्छी पुस्तकों का अध्ययन करना चाहिये। महान पुरुषों का, स्वामी विवेकानन्द के शक्तिदायी विचारों का अध्ययन करना चाहिये। नैतिक और आध्यात्मिक लोगों का संग करना चाहिये। इससे अनावश्यक बुद्धि-विभ्रम दूर होता है, बुद्धि शुद्ध होती है, तब इसका समुचित विकास होता है, जो व्यक्तित्व-विकास हेतु अत्यन्त आवश्यक है।

व्यक्तित्व-विकास का पाँचवाँ घटक अहंकार है। वेदान्त ने विराट अहं को स्वीकार किया है। व्यक्तित्व विकास में इस अहं की बड़ी भूमिका है। बिना इस अहं के हम लौकिक कार्य में अग्रसर नहीं होते। यह सभी कार्यो के संकल्पों का स्रोत है। जब यह अभिमानी होकर दूसरों का अहित और लोक भावनाओं का अपमान, उपेक्षा करने लगता है, तब यह मानव के व्यक्तित्व को निम्न कर देता है। किन्तु जब यह लोककल्याणार्थ संकल्पित होकर ईश्वरीय सत्ता की भावना से सबका सम्मान करता है और लोकहित में अग्रसर होता है, तब इसके दैवी गुणों का, दैवी स्वरूप का विकास होता है, जो व्यक्तित्व विकास का महत्त्वपूर्ण अंग है।

अन्तिम छठवाँ घटक आत्मा है। आत्मा के बिना ये सभी घटक निष्क्रिय और शव हैं। इनका कोई मूल्य नहीं है। इसलिये व्यक्ति को आत्मा की अवधारणा आवश्यक है। आत्मा अनादि, अनन्त, जन्म-मरणरहित, अखण्ड, अभेद्य, विराट और शाश्वत है। यह सत्-चित्-आनन्दमय है। यह आत्मचैतन्य ही हमारा मूल स्वरूप है। काम-क्रोध, लोभ-मोह, राग-द्वेषादि के कारण हम अपने शुद्ध सच्चिदानन्दमय स्वरूप की न अनुभूति कर पाते हैं, न ही उसे व्यक्त कर पाते हैं। अत: हमें ईश्वर-नाम के जप द्वारा, भगवान के रूप के ध्यान के द्वारा, सत्संग-स्वाध्याय, सत्यनिष्ठा और नैतिक सत्कर्मों के द्वारा अपने मूल स्वभाव आत्मचैतन्य की अनुभूति कर उसे अपने आचरण द्वारा व्यक्त करना चाहिये। तभी सम्यक् विकसित व्यक्तित्व कहा जायेगा। तभी तो मानवीय दिव्य चेतना के प्रकृष्ट उद्घोषक व्यक्तित्व-विकास के मूल सूत्र प्रदाता स्वामी स्वामी विवेकानन्द जी कहते हैं – "हम ऐसा मनुष्य देखना चाहते हैं, जिसका विकास विशाल हृदय, उच्च मनोबल और महान कर्म के समन्वित रूप से हुआ हो।... सच्चा मनुष्य या उसका व्यक्तित्व ही वह वस्तु है, जो हम पर प्रभाव डालती है।... सारी शिक्षा का ध्येय है मनुष्य का विकास।" अत: तन-मन-बुद्धि का समुचित विकास कर अपने जीवन में शुद्ध आत्मस्वरूप की अनुभूति और अभिव्यक्ति करें । OOO

निवेदिता की दृष्टि में स्वामी विवेकानन्द (१८)

संकलक : स्वामी विदेहात्मानन्द

[योगानन्द की मृत्यु के वर्णन के बाद जिस बालक की मृत्युकथा मिलती है, उससे अधिक महान मृत्यु कम ही देखने को मिलती है। हमें बालक का नाम मालूम नहीं है। अपने जीवन-काल में वह कितना बड़ा था, यह तो जानने का अवसर नहीं मिला, परन्तु उसका अन्त अभूतपूर्व था! मनुष्य जिस प्रशान्त मृत्यु के लिये साधना करता है, जो हमें साहित्यिक कल्पना में देखने को मिलती है, वही उस बालक को वास्तविक जीवन में मिली थी – श्रीमाँ की इच्छा से उसे अपने जीवन में मिली थी। इस साधारण के भीतर असाधारण की अभिव्यक्ति का अनुभव करके निवेदिता धन्य हो गयी थी और उन्होंने कृतज्ञतापूर्वक उसका वर्णन किया है – योगानन्द की मृत्यु के वर्णन के बाद ही हम उस विवरण को भी उद्धृत करेंगे, उसका कारण यह है कि वे एक महान बालक की – जिसमें उन्होंने शिशु-भगवान की अभिव्यक्ति का बोध किया था – उसी की प्रशान्त मृत्यु की कल्पना से वे आतंकित हो उठी थीं।]

मंगलवार को अपराह्न में योगानन्द की मृत्यु हुई। अधिकांश संन्यासी उनके पास ही थे। जब उनसे पूछा गया, "भाई, कैसे हो, क्या बड़ा कष्ट हो रहा है?" उन्होंने उत्तर दिया, "मैं प्रतिक्षण ब्रह्म-चेतना में डूब जाने की चेष्टा कर रहा हूँ, परन्तु मेरा मन सगुण ईश्वर को पकड़े हुए है। थोड़ा-सा गीता पढ़कर सुनाओ।" गीतापाठ हो जाने पर वे बोले, "अब कोई पीड़ा नहीं है, सब कुछ पिघलता जा रहा है, ब्रह्म-चेतना आ रही है।" कहते-कहते सहसा उन्होंने आवाज को बढ़ाकर 'ॐ रामकृष्ण!' कहा और इसके बाद ही चिर समाधि में डूब गये।

अद्भुत! कितना अद्भुत!

स्वामीजी आये थे। प्रिय वृद्ध श्री घोष (गिरीशचन्द्र घोष) भयभीत हुए कि स्वामीजी कहीं फिर बीमार न पड़ जायँ। उन्होंने स्वामीजी को हठपूर्वक मठ भेज दिया। इसके लिये मैंने विशेष कृतज्ञता का बोध किया।

मैं श्रीमाँ के पास गयी। वे रो रही थीं। योगीन-माँ ने पिछले कई महीनों से उनकी निरन्तर सेवा की थी; वे बिना आँसू बहाये चुपचाप फर्श पर पड़ी हुई थीं। बड़ी देर तक वहाँ रहने के बाद नीचे से ४०-५० लोगों के गले का समवेत स्वर सुनाई पड़ा 'हरि ॐ!' माँ बोलीं, जल्दी से नीचे जाकर देखो!

बड़ा गम्भीर दृश्य था। दिवंगत व्यक्ति – सिर पर गेरुए सिल्क की एक बड़ी पगड़ी – शरीर उन फूलों से ढका था, जिन्हें स्वामीजी तथा अन्य लोगों ने उन पर बिखेर दिये थे – सदानन्द तथा एक अन्य व्यक्ति ने उन्हें अपनी बाँहों के सहारे उठा रखा था। कपूर जलाकर उनके सामने आरती की जा रही थी और घर के भीतर तथा बाहर एकत्र लोग पवित्र नाम का उच्चारण किये जा रहे थे।

उस समय सदानन्द का चेहरा देखने लायक था – बिल्कुल ऋषि जैसे!

सहसा ऊपर की मंजिल से लम्बे रुदन की आवाज आयी – और वह नीचे पूजा की आवाज के साथ मिलकर चारों ओर फैल गयी। स्थानीय महिलाओं ने समझ लिया था कि अब तक इस घर के जो स्वामी थे, वे सदा के लिये चले जा रहे हैं। अब योगीन-माँ की हिम-शीतल स्तब्धता टूटी – मुझे लगा कि उनका तथा माँ का हृदय मानो फट रहा है। योगानन्द चले गये। उन्हें लिटाने के लिये बड़ी कोमल शय्या बनायी गयी थी। उनके बिस्तर को पीले फूलों से तथा शरीर को श्वेत फूलों से ढक दिया गया था।

लोग श्मशान में उनकी चिता सजाते हुए सारे समय उनके साथ बातें करते रहे और ब्रह्मानन्द द्वारा चिता प्रज्वलित किये जाने के पूर्व, यदि पहले उन लोगों से कोई भूल हुई हो, तो उसके लिये क्षमा याचना की।

सदानन्द बोले, "अग्नि के बीच में उनका मुख ठीक शिव के समान था।"

[२६ अप्रैल के एक पत्र में निवेदिता ने श्रीमाँ के शोक के विषय में लिखा है, "योगानन्द की मृत्यु से श्रीमाँ तथा योगीन-माँ को बड़ा आघात पहुँचा। अब 'मृत्यु' शब्द तक उनके लिये असह्य हो उठा है। यह कितना भयंकर शोक है! 'हाँ, हाँ, मैं जानती हूँ, वह मेरे ठाकुर के पास गया है। परन्तु वह मेरा योगीन था, प्रभु ने उसे छीन लिया।'"]

सदानन्द के मुख से मुझे एक अन्य मरणासन्न बालक की कथा सुनने को मिली। माँ ने उसे गंगाजी के घाट पर ले जाने का आदेश दिया था।

बालक ने पूछा था, "तो क्या मेरी मृत्यु निकट आ गयी

है?''

उन लोगों ने टालते हुए कहा, ''माँ का आदेश है!''

बालक तत्काल बोला, ''अवश्य, माँ को मेरा प्रणाम। उनकी बात तो माननी ही होगी। आप लोग ले चलिये।'' तब वे लोग उसे शय्या के साथ बाहर लाये। माँ बरामदे में खड़ी आँखें झुकाये देखती रहीं। त्रिगुणातीत गंगाजी की मिट्टी से उसके पूरे शरीर पर पहले श्रीरामकृष्ण, फिर श्रीकृष्ण तथा अन्य देवताओं के नाम लिखने लगे। बालक वह लिखना देखते हुए बोला, ''ये सब नाम मिटाकर एक ही नाम रखो – मैं उसी नाम के सहारे अब तक जीवित रहा हूँ, मृत्यु के समय भी वही नाम लेकर जाऊँगा।'' वैसा ही किये जाने के बाद उसने आँखें उठाकर विदा लेने के लिये माँ की ओर देखा। इसके बाद सभी उसे वहन करके ले गये। सारे रास्ते वह बड़े आनन्दपूर्वक बातें करता रहा, परन्तु नदी के तट पर पहुँचते ही उसकी मृत्यु हो गयी! जब तक वे लोग गंगाजी के घाट पर रहे, तब तक गर्जन के साथ प्रचण्ड तूफान लहरों के साथ उठता-गिरता रहा। मुझे लग रहा था कि यह सब कितना स्वाभाविक है! यह उचित ही लगा कि विदा ले रही आत्मा को ले जाने के लिये पवनदेव ने अपने संगीतमय महारथ को भेजा है।

५ अप्रैल, मिस मैक्लाउड को

योगानन्द की मृत्यु के बाद मेरी स्वामीजी से भेंट नहीं हुई। पिछले रविवार को जनरल तथा श्रीमती पैटर्सन उनसे विदा लेने के लिये गाड़ी से मठ गये थे। श्रीमती पैटर्सन उनकी बीमारी तथा शारीरिक दुर्बलता का भयंकर वर्णन कर रही थीं, जिसे सुनकर मैं आशंकित हो गयी। क्या होगा – यदि उनकी मृत्यु हो जाय तो! मेरे लिये पृथ्वी क्षण भर में जलकर राख बन जायेगी।

८ अप्रैल, मिस मैक्लाउड को

जैसी कि मेरी आशंका थी, स्वामीजी काफी बीमार थे। उन्होंने काफी मात्रा में होम्योपैथिक औषधियों का सेवन किया है, जिससे उनका स्वास्थ्य काफी डाँवाडोल हो गया है। अब वे थोड़े ठीक हैं। उन्होंने सारदानन्द को लौट आने के लिये टेलिग्राम भेजा है, क्योंकि वे इंग्लैंड जाने को तैयार हैं। मैंने एक बार फिर उनकी कुण्डली की गणना कराई है। मुझे यह सुनकर बड़ी दिलासा मिली कि बृहस्पति का प्रभाव और भी ९ वर्षों तक सक्रिय रहेगा। इस समय एक बुरा ग्रह उनके स्वास्थ्य को चौपट कर रहा है और उनके लिये शोक-ताप की सृष्टि कर रहा है, परन्तु उसका प्रभाव १८९९ ई. के ६ दिसम्बर को समाप्त हो जायेगा। इसके बाद वे ऐसी सफलता तथा प्रसिद्धि प्राप्त करेंगे, जैसी उन्हें पहले कभी नहीं मिली। अत: मैं जानती हूँ कि चिन्ता की जरूरत नहीं है। ...

ज्योतिष की गणना के विषय में मैं यह बताना चाहूँगी; और इसे जानकर सांत्वना भी मिलती है कि स्वामीजी की अवस्था में परिवर्तन होनेवाला है। जब तक जातक का जीवन बृहस्पति के द्वारा नियंत्रित हो रहा हो, तब तक उसकी मृत्यु नहीं हो सकती।

बुधवार की सुबह। कल सबेरे आठ बजे गेरुआ पहने हुए एक दूत ने आकर घोषणा की – ''सिस्टर निवेदिता हैं क्या? स्वामीजी आये हैं।'' मैं अवाक् रह गयी। इसके बाद मैं अपनी विस्मय-विह्वलता को छोड़कर उनका स्वागत करने के लिये उठ खड़ी हुई – स्वामीजी स्वास्थ्य तथा आनन्द के साथ उपस्थित थे। बातचीत करने के लिये स्वामीजी अध्ययन-कक्ष के बरामदे में और मैं विद्यालय की सीढ़ी पर बैठ गयी। वे बीच-बीच में उद्दीप्त होकर उठ जाते और बरामदे में टहलने लगते।

मैंने उन्हें अपनी आशंका तथा उनकी कुण्डली-गणना की बात कही। इस पर वे फट पड़े, ''मैं अन्धविश्वास का एक शब्द भी नहीं सुनना चाहता। मुझे यह सब हटाकर उसकी जगह शुद्ध और सहज अद्वैतवाद की स्थापना करनी है।[१] हिमालय में एक; और यदि चाहो तो यहाँ भी एक केन्द्र होगा।'' उनका व्यक्तित्व एक विराट झंझावात के सदृश है। ''मैं कार्य चाहता हूँ – सक्रियता – इस सप्ताह हम एक व्याख्यान आयोजित कर रहे हैं। मैं अध्यक्षता करूँगा और तुम व्याख्यान दोगी। पूरे कलकत्ते के छात्र आयेंगे। वे आकर अपने हाथों से पूरे नगर को स्वच्छ करेंगे। मैं उनमें 'मृत्यु-बुखार' का संचार कर देना चाहता हूँ। इसका तात्पर्य जानती हो? कल पूरे दिन मैं अपने यहाँ के बच्चों को यही बात समझा रहा था और इस समय वे चाबुक लगाये हुए कुत्तों के समान हो गये हैं।''

इसके बाद उन्होंने बड़ी उत्तेजना के साथ पोस्टर बनाने का आदेश दिया। ...**(क्रमशः)**

१ निवेदिता का ज्योतिष में विश्वास था। उनके पत्रों में अनेक स्थानों पर इस बात का उल्लेख मिलता है। उनका विख्यात हस्तरेखा-विशेषज्ञ कीरो (Cheiro) के साथ परिचय था। दूसरी ओर स्वामीजी इन सब बातों को दुर्बलता और अन्धविश्वास का सूचक मानते थे। निवेदिता ने पहले भी अपनी 'भ्रमण' पुस्तक में (११ अगस्त, १८९८) एक फटकार का विवरण दिया है – ''आज हमारी टोली के एक सदस्य के हस्तरेखा विज्ञान का प्रयोग करने पर स्वामीजी द्वारा उसे डाँटने का अवसर आया। उन्होंने बताया कि यह एक ऐसी चीज है, जिसे सभी लोग चाहते हैं, तथापि पूरे भारत में इसे हेय तथा घृण्य समझा जाता है। एक जन की कुछ खास युक्ति के उत्तर में उन्होंने कहा कि अंगलक्षण देखकर चरित्र पढ़ने का भी वे समर्थन नहीं करते। वे बोले, ''सच कहूँ, तो यदि तुम्हारे अवतार तथा उनके शिष्यों ने चमत्कार नहीं दिखाये होते, तो मैं उन्हें कहीं अधिक सच्चा समझता। बुद्ध ने इसी कारण एक भिक्षु को संघ से बहिष्कृत कर दिया था।''
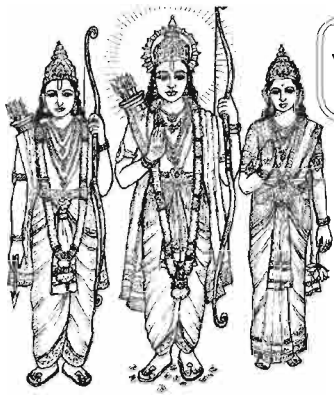
यथार्थ शरणागति का स्वरूप (४/४)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(पं रामकिंकर महाराज श्रीरामचरितमानस के अप्रतिम विलक्षण व्याख्याकार थे। रामचरितमानस में रस है, इसे सभी जानते हैं और कहते हैं, किन्तु रामचरितमानस में रहस्य है, इसके उद्घाटक 'युगतुलसी' की उपाधि से विभूषित श्रीरामकिंकर जी महाराज थे। उन्होंने यह प्रवचन रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के पावन प्रांगण में १९९२ में विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में दिया था। 'विवेक-ज्योति' हेतु इसका टेप से अनुलिखन स्वर्गीय श्री राजेन्द्र तिवारी जी और सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने किया है। – सं.)

उसका अभिप्राय ही है कि वह भक्त भगवान से यह निवेदन करता है और भगवान भी यही घोषित करते हैं। इसीलिये एक सांकेतिक भाषा है कि जो घड़ी वाले होते हैं, वे तो उलाहना दिये बिना नहीं रहते। देर से आइए, तो कहते हैं कि आप इतनी देर से आए, लेकिन संयोग ऐसा है कि भगवान के पास कोई घड़ी है। घड़ी इसलिये नहीं है कि जहाँ घड़ी है, वहाँ काल है। भगवान तो कालातीत हैं, इसलिये वहाँ कोई घड़ी ही नहीं है। इसलिये कोई कितनी भी देर करके आवे, उनको पता ही नहीं चलता कि कौन कितना देर करके आया। घड़ी से ही तो पता चलता है। बस, आया, इतना देखकर प्रसन्न हो जाते हैं, उसका स्वागत करते हैं।

सन्त जब भगवान की करुणा का वर्णन करते हैं, तो मानो जीव को आश्वस्त करने के लिये कि किसी पुरानी भूल या किसी पुराने पाप के भय से हम भगवान की ओर जाने से डरें, भगवान की ओर न जाएँ, यह हमारे लिये दुर्भाग्य की बात होगी। इसलिये बार-बार यह कहा जाता है कि भगवान दयालु हैं, भगवान कृपालु हैं। भगवान स्वयं भी घोषित करते हैं –

सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं।
जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं।। ५/४३/२

भगवान का अभिप्राय मानो यह है कि मेरी शरण में कोई आ जाता है, तो उसका जो पुराना जीवन है, वह क्या है, कैसा है, उसको मैं नहीं देखता। पर विभीषण की मन:स्थिति की समस्या क्या है? मिथ्या धर्म की धारणा, लोग, समाज क्या कहेगा, इसका भय, भगवान स्वीकार करेंगे या नहीं, इसका भय। इन सभी मिथ्या धारणाओं के निवारण के लिये आवश्यकता थी संत की, सत्संग की। सत्संग करना क्यों आवश्यक है? हनुमानजी के रूप में महान भक्त, महान संत का आगमन हुआ। उन संत ने उन

सारी समस्याओं का समाधान किया। वहाँ जो संवाद हुआ, उस संवाद से विभीषण के अन्त:करण में जो सारे भ्रम थे, उनका निराकरण हुआ। हनुमानजी विभीषण के द्वार पर आकर खड़े हुए। विभीषण की नींद खुल गई और नेत्र खुलते ही 'राम राम' कहा –

राम राम तेहिं सुमिरन कीन्हा।
हृदयँ हरष कपि सज्जन चीन्हा।। ५/५/३

विभीषण तो राम भक्त हैं, राम का स्मरण किया, राम का उच्चारण किया। तब हनुमानजी समझ गये कि ये जरूर सज्जन हैं। क्या जो राम-राम कहते हैं, वे सब सज्जन ही होते हैं क्या?

एक बार तुलसीदासजी से सूरदासजी ने कहा, आइए, आइए तुलसीदासजी ! उन्होंने देखा तो था नहीं, क्योंकि उनकी दृष्टि नहीं थी। पूछ दिया कि आपने कैसे जान लिया कि यह तुलसीदास है? उन्होंने कहा, इस युग में इतने गद्‌गद् भाव से ऐसे स्वर में जय श्रीसीताराम कहनेवाला दूसरा और कौन हो सकता है? वही श्रीभरत के विषय में आता है। श्रीभरत जब चित्रकूट की यात्रा करते हैं, तो जिस समय वे श्रीराम का नाम लेते हैं, तो क्या होता है? गोस्वामीजी कहते हैं –

जबहिं रामु कहि लेहिं उसासा।
उमगत पेमु मनहुँ चहु पासा।।
द्रवहिं बचन सुनि कुलिस पषाना।।
पुरजन पेमु न जाइ बखाना।। २/२१९/६-७

जब हृदय से कोई शब्द बोलता है, तो उसका अलग ही प्रभाव होता है। एक व्यक्ति जो व्याकरण का पण्डित है, वह जो शब्द बोले और एक बालक अपनी माँ से जो शब्द बोले, भले ही व्याकरण के दृष्टि से उस बालक का उच्चारण अशुद्ध हो, पर उसके शब्द में जो वात्सल्य उमड़

रहा है, जिसे माँ अनुभव करती है, वह व्याकरण से कहाँ से आएगा? व्याकरण के पण्डितजी शब्द को शुद्ध चाहे जितना बोलें, पर वह वात्सल्य का रस कहाँ से लायेंगे? विभीषण तो भक्त हैं और जब राम शब्द उनके मुख से निकला, तो हनुमानजी समझ गये कि अरे, जो इतने प्रेम से प्रभु का नाम ले रहा है, वह अवश्य ही सज्जन होगा। तब उन्होंने निर्णय किया। हनुमानजी क्या निर्णय करते हैं? –

एहि सन हठि करिहउँ पहिचानी। ५/५/४

अब इनसे हठ करके मैं परिचय प्राप्त करूँगा। कितनी बढ़िया बात है। भगवान श्रीरामकृष्ण कहा करते थे, जब किसी में तीन उत्कंठा होती है, तब भगवान स्वयं उसके लिये सारा विधि-विधान एकत्र कर देते हैं। विभीषण संत को खोजने बाहर नहीं गये। पर प्रभु ने स्वयं उचित अवसर पर संत को भेज दिया। सन्त भी ऐसा कि विभीषण अगर मुझसे परिचय नहीं करना चाहेगा, तो मैं हठपूर्वक, जिद करके, जबर्दस्ती उससे परिचय करूँगा। क्यों? बोले –

साधु ते होइ न कारज हानी।। ५/५/४

क्योंकि साधु से परिचय करने में कोई हानि नहीं होती है। संसारी व्यक्ति से परिचय करने में तो बुद्धिमान भी घबराते हैं। यह स्वाभाविक ही है कि ये परिचय करने वाले व्यक्ति क्या-क्या सोचकर परिचय करते हैं, क्या-क्या उनका स्वार्थ रहता है, इसका दृष्टान्त मिलता है। लेकिन जो सज्जन होते हैं, सज्जन तो स्वभाव से संतोषी होते हैं। इसलिये हनुमानजी कहते हैं कि अगर ये नहीं भी चाहेंगे, तो भी मैं इनसे हठपूर्वक परिचय करूँगा।

एक अनोखी बात है। हनुमानजी सन्त हैं या विभीषण सन्त हैं? संतत्व यही है। हनुमानजी विभीषण को संत मानते हैं और विभीषण हनुमानजी को संत मानते हैं। दोनों का अपना-अपना तर्क है। क्या? किसी ने हनुमानजी से पूछा – आप विभीषण को संत कैसे मानते हैं? उन्होंने कहा, सारी लंका मैंने ढूँढ़ डाली, प्रत्येक घर का कोना मैंने देख लिया, पर श्रीसीताजी को मैं कहीं नहीं खोज पाया। जिनकी कृपा से उनका दर्शन हुआ, उनसे बढ़कर संत कौन होगा? अगर वे कृपा न करते, तो श्रीसीताजी का पता मैं नहीं लगा पाता। रामायण का सिद्धान्त है कि भक्ति परम कल्याणकारिणी है, पर भक्ति के लिये एक सिद्धान्त है। क्या? कहा जाता है कि भगवान की कृपा से भक्ति मिलती है, लेकिन भगवान कृपा कैसे करते हैं? कहते हैं –

जब द्रवै दीनदयाल राघव साधु संगत पाइए।

जब भगवान कृपा करते हैं, तब संत मिलते हैं। यही उनकी शैली है। पर कभी-कभी ऐसे व्यक्ति से पाला पड़ जाये, जो सीधे कृपा करने वाले, स्वीकार करने वाले होते हैं। जयन्त जैसा व्यक्ति, जो श्रीसीताजी के ही चरणों में प्रहार कर दे, रक्त बहने लगे, उसके पीछे तो प्रभु बाण ही लगा देते हैं। पर कितने उदार हैं, एक ओर बाण को पीछे लगा दिया और वह जब चारों ओर भागने लगा, तो एक संत के हृदय में प्रेरणा कर दी, बाण तो पीछा कर ही रहा है, तुम भी तो पीछा करो। ये संत भी पीछा करते हैं। जो भगवान से विमुख होने जा रहे हैं, उसके पीछे वे दौड़े। सुनो, सुनो तुम क्यों भागे जा रहे हो? महाराज, यह भी कोई पूछने की बात है? आप देख नहीं रहे हैं, पीछे बाण लगा हुआ है? किसका बाण है? श्रीराम का बाण है। तुम कहाँ-कहाँ गये थे? मैं पूरे ब्रह्मलोक में गया, शिवलोक में गया। किसी ने तुम्हारी रक्षा नहीं की? अच्छा, बाण तुम्हारे पीछे क्यों लगा हुआ है? मारने के लिये। तो जब तुम्हें कोई बचाने वाला नहीं है और बाण तुम्हें मारने आ रहा है, तो वह तुम्हें मार क्यों नहीं रहा है? तुम सोचो तो। संत घटनाओं को देखने की दृष्टि बदल देता है। घटना वही है, दृष्टि बदल गई। उन्होंने कहा, तुमने ऐसा कैसे समझ लिया कि बाण तुम्हें मारने आ रहा है? महाराज, बात तो आपकी ठीक लग रही है। बोले, तुम एक काम करो, यह बाण तो काल है, इस काल से तुम्हें सुरक्षा कहीं नहीं मिलेगी, पर यह बाण जिन कर-कमलों से चलता है, बाण जितना कठोर लगता है, उसके पीछे जो भुजा है, वह अत्यन्त कोमल है।

इतना सत्य संत बता देते हैं, जब कभी जीवन में दुख या प्रतिकूलता पीछा करे और उसके पीछे भगवान का हाथ दिखाई दे, तो कल्याण समझो। जिसको भगवान का हाथ दिखाई नहीं देता, उसका दुख तो सौ गुना बढ़ जाता है। जब शंकरजी से कहा गया कि विष पी लीजिए, तो उन्होंने पूछा किसने भेजा है, किसने कहा है? भगवान विष्णु ने कहा है। अच्छा ! उन्होंने कहा है, तब तो उससे बढ़िया बात कोई हो ही नहीं सकती। जयन्त, तुम प्रभु की भुजाओं के नीचे जाकर ही बच सकते हो, वे अत्यन्त कोमल हैं। ये बाण मारने के लिये नहीं, तुम्हें निमंत्रण देने के लिये तुम्हारा

पीछा कर रहा है। कह रहा है, उधर लौटो, उधर लौटो। इसीलिये जहाँ भी जाते हो, पीछा करते हुए कहता है, कहीं नहीं बचोगे, बचना है तो उधर ही लौट जाओ। महाराज, आप कहते तो ठीक हैं, लेकिन मैं वहाँ जाऊँगा, तो क्या मुँह लेकर जाऊँगा, क्या कहूँगा? बोले, यही कहना कि महाराज, मैं तो आपका प्रभाव देखने के लिये आया था। मैं दूर थोड़े ही गया था, घर में तो सबका प्रभाव होता है, मैं देखना चाहता था कि आपका प्रभाव कहाँ तक फैला हुआ है। इसीलिये, स्वर्ग में गया, ब्रह्मलोक में गया, कैलाश में गया, मैंने देखा कि आपका प्रभाव तो सर्वत्र व्याप्त है। पूछ दिया जयन्त ने, महाराज अगर पूछेंगे कि अब क्या देखने आए हो तब? तो कह देना, प्रभाव तो देख लिया, अब आपका स्वभाव देखना बाकी है। स्वभाव तो बिना पास में आए देखने को नहीं मिलता है। संत से वह दृष्टि मिली, शरणागत हो गया। सूत्र वही है, मानो संत वही है, जो दृष्टि दे देता है, व्यक्ति को आश्वासन दे देता है। उसकी वृत्ति कितनी दूसरे में गुण दर्शन की होती है। रामायण की मान्यता है कि भगवान की कृपा से भक्ति मिलती है। वह कृपा संत के रूप में मिलती है। इसलिये रामायण में कहा गया है

भगति तात अनुपम सुखमूला।

मिलइ जो संत होइँ अनुकूला।। ३/१५/४

हनुमानजी ने कहा कि इतना प्रयत्न और साधन करने के बाद भी जब तक विभीषण के रूप में संत नहीं मिला, तब तक मैं श्रीसीताजी को नहीं ढूँढ़ पाया। विभीषण तो ठीक ही मानते हैं कि मैं सब युक्ति जानता था, मार्ग जानता था कि श्रीसीताजी कहाँ है, पर उसे जीवन में चरितार्थ नहीं कर पाया। अगर हनुमानजी जैसे संत न आते, तो मैं भगवान की शरण में कभी जा ही न पाता। दोनों एक-दूसरे के प्रति कृतज्ञ हैं।

विनम्रता की यह भावना है। जब मिलन हुआ, तब क्या हुआ?

बिप्र रूप धरि बचन सुनाए।

सुनत बिभीषन उठि तहँ आए।। ५/५/५

तब विभीषण जी ने हनुमानजी को देखकर पूछ दिया, क्या आप भगवान के भक्तों में से कोई हैं? –

की तुम्ह हरि दासन्ह मँह कोई। ५/५/७

पूछा जाय कि क्यों आपको ऐसा लगता है? तो कहते हैं –

मोरें हृदय प्रीति अति होई। ५/५/७

आपको देखकर सहज रूप से मेरे हृदय में जो प्रेम उमड़ रहा है, वह बता रहा है कि अवश्य आप प्रभु के भक्त हैं। इतना ही नहीं, मुझे तो यह भी लगता है कि –

की तुम राम दीन अनुरागी।

आयहु मोहि करन बड़भागी।। ५/५/८

मैं तो स्वयं जाने योग्य नहीं हूँ, कहीं आप स्वयं प्रभु ही तो नहीं हैं, जो दीनों पर कृपा करके मुझे सौभाग्यशाली करने के लिये आ गये? यही हनुमानजी के चरित्र का सर्वोत्कृष्ट वैशिष्ट्य है।

हनुमानजी पवन पुत्र हैं ! पवन की क्या विशेषता है? एक तो वाटिका में कोई फूल जमा हुआ हो और आप वहाँ जायें और उसके सुगन्ध का अनुभव करें। दूसरा यह कि आप वाटिका से भले ही दूर हों, पर पवन का एक झोंका उस फूल के पास से आवे और जब उस फूल की सुगन्ध आपको मिलेगी, तो मन में तुरन्त यह बात आयेगी कि लगता है कि पास में अवश्य कोई बाग है, जहाँ यह पुष्प लगा है, जिसकी सुगंध नाक में आ रही है। मानो पवनपुत्र की विशेषता है कि जहाँ जाते हैं, वहाँ अनुभव होता है कि प्रभु की सुगंध लेकर आये हैं और वे आते हैं तो ऐसा लगने लगता है कि प्रभु आ गये। जब विभीषण जी ने पूछा, आप अपना परिचय दीजिए, आप अपना चरित्र सुनाइये। हनुमानजी से बढ़कर कथावाचक कौन होगा? भगवान ने भी उनको प्रमाण पत्र दिया। जिस समय पहली बार मिलन हुआ, तो प्रभु ने कहा –

आपन चरित कहा हम गाई।

कहहु बिप्र निज कथा बुझाई।। ४/१/४

प्रभु ने कहा कि मैंने तो अपना चरित्र सुनाया । अब आप अपनी कथा सुनाइए। यह एक अलग प्रसंग है। **(क्रमशः)**

जो लोग स्वयं तो धर्म की चर्चा करते ही नहीं, वरन् दूसरों को ध्यान-पूजा करते देख उनका हँसी-मजाक उड़ाते हैं और धर्म और धार्मिक पुरुषों की निन्दा करते हैं, ऐसे पुरुषों का संग साधक के लिए सर्वथा अनुचित है। ऐसे लोगों से दो हाथ दूर ही रहना चाहिए।

– श्रीरामकृष्ण परमहंस

स्वामी विवेकानन्द और उन्नीसवीं-बीसवीं शताब्दी में भारत का जागरण

स्वामी भजनानन्द

वरिष्ठ न्यासी, रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन, बेलूड़ मठ

(अनुवादक - स्वामी गीतेशानन्द, रामकृष्ण मिशन, शिमला, हि.प्र.)

एच. जी. वेल्स की प्रसिद्ध पुस्तक 'इतिहास की रूपरेखा' में 'यूरोपवासियों का बौद्धिक उत्थान' नामक शीर्षक है। इस अध्याय में वर्णन है कि किस प्रकार से यूरोपियन्स के समष्टि मन में १२वीं, १३वीं और १४वीं शताब्दी में जागृति के कारण सर्वसाधारण में ज्ञानपिपासा तथा ज्ञानार्जन के लिए उद्यम का शुभारम्भ हुआ। इस जागृति का प्रमुख कारण था यूरोप का धर्मयुद्ध के दौरान एशिया की उन्नत सभ्यता के संपर्क मे आना। इस संपर्क के कारण यूरोपवासियों ने ग्रीक साहित्य तथा ग्रीक दर्शन का पुनराविष्कार किया, अरबी संख्या सीखी तथा कागज बनाना सीखा।

इन सब घटनाओं से यूरोप में बौद्धिक जागरण हुआ। ऑक्सफ़ोर्ड, पेरिस, बोलोग्ना तथा अन्यान्य शहरों में विश्वविद्यालय स्थापित हुये। मठ भी ज्ञानचर्चा के लिए प्रसिद्ध हुए। ज्ञानार्जन के लिए लोग दूसरे प्रान्तों में जाने लगे, पुस्तकों की माँग बढ़ने लगी। चूंकि उस समय तक छापेखाने का आविष्कार नहीं हुआ था, अत: लोग हाथ से ही पुस्तकों की नकल कर लेते थे।

बौद्धिक जागृति के कारण ही परवर्ती शताब्दियों में पुनर्जागरण, विज्ञान का विकास , मशीनों का आविष्कार, बौद्धिक विकास, औद्योगिक क्रान्ति, धार्मिक और राजनैतिक उत्थान, साहसिक समुद्री यात्राएँ तथा दूसरे देशों में उपनिवेश की स्थापना आदि संभव हुए, जिनके द्वारा यूरोपीय प्रचुर धन-सम्पदा एकत्रित कर द. अमेरिका, अफ्रीका तथा एशिया महाद्वीप में अपना प्रभुत्व स्थापित कर सके।

भारत का जागरण

यह इतिहास का प्रहास है कि जब यूरोपीय मन जाग रहा था, ठीक तभी भारतीय मन निद्राग्रस्त हो रहा था और भारतीयों की यह सुगम्भीर निद्रा लगभग सात सौ वर्ष की अवधि तक चली। यह सर्वविदित है कि १२वीं शताब्दी तक भारत विश्व का सबसे धनी देश था। वैश्विक GDP में एक तिहाई भारत ही उत्पादन करता था। लेकिन ११वीं शताब्दी के बाद से विदेशी आक्रान्ताओं का शिकार होने के कारण इसकी अर्थव्यवस्था लगातार गिरती गयी और १६वीं शताब्दी तक आते-आते वैश्विक जीडीपी में इसका योगदान केवल २५% तक रह गया। चीन भारत से आगे निकल गया साथ ही यूरोप का शेयर भी बढ़ने लगा। १७०० के बाद ब्रिटिश अधिकार के बाद भारत विश्व के गरीब देशों में गिना जाने लगा।

भारत का पतन केवल अर्थव्यवस्था के पतन तक ही सीमित न रहकर सभी क्षेत्रों में होने लगा। जाति-व्यवस्था और कठोर हो गयी तथा समाज का एक बड़ा अंश अछूत माना जाने लगा। जाति पुन: उपजातियों में विभक्त हो गयी, अन्तर्जातीय विवाह तथा एक साथ बैठकर खान-पान (उपजातियों में भी) निषिद्ध हो गये। इसके कारण सामाजिक एकता टूट गयी। मौर्य वंश तथा गुप्त वंश के पतन के बाद भारत छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त हो चुका था, जो आपस में लड़ते रहते थे। इससे राष्ट्रीय एकता लुप्त हो गई। स्त्री-शिक्षा कुंठित हो गयी और समाज का एक विशाल वर्ग अशिक्षित रहने लगा। लोगों का धार्मिक जीवन अन्धविश्वास, पौरोहित्यवाद, देवदास प्रथा, विरूप सम्प्रदायों का उन्मेष तथा व्यभिचार से बुरी तरह से ग्रसित था। विज्ञान, कला, साहित्य तथा दर्शन सभी क्षेत्रों में बौद्धिक सर्जनशीलता निचले स्तर पर थी। १०वीं शताब्दी के बाद से ही भारतीय मनन ने प्रकृति में रुचि लेना बंद कर दिया था तथा प्राकृतिक जगत के प्रति विमुख हो उठा। जैसाकि ब्रिटिश लेखक नायपाल (२००१ नोबल पुरस्कार विजेता) लिखते हैं, ''भारतीय मानस एक प्रकार की समष्टिगत आत्मविस्मृति के वशीभूत हो चुका था। १८वीं शताब्दी के अन्त तक भारत विशालकाय सुप्त सिंह में परिणत हो गया था। शताब्दी के प्रारम्भ में इस सुप्त सिंह में जागृति के कुछ-कुछ लक्षण दृष्टिगोचर होने लगे। जिस प्रकार १३वीं और १४वीं शताब्दी में मध्य एशिया की उन्नत सभ्यताओं के संपर्क में आने से यूरोपियों में जागृति आयी, ठीक उसी प्रकार पाश्चात्य संस्कृति का सन्निकर्षण भारतीय मन के जागरण का कारण बना। स्वामी विवेकानन्द ने ही सर्वप्रथम इस जागृति की पूर्व सूचना दी। दक्षिण भारत के रामनाद

शहर में व्याख्यान देते हुये उन्होंने कहा –

'सुदीर्घ रजनी अब समाप्त होती हुई जान पड़ती है। महादुख का प्राय: अन्त ही प्रतीत होता है। महानिद्रा में निमग्न शव मानो जागृत हो रहा है। ज्ञान, भक्ति और कर्म के अनन्त हिमालय स्वरूप हमारी मातृभूमि। और देखो, वह निद्रित भारत अब जागने लगा है। अब कोई उसे रोक नहीं सकता। अब यह फिर सो भी नहीं सकता। कोई बाह्य शक्ति इसे अब दबा नहीं सकती। क्योंकि अनन्त शक्तिसम्पन्न यह देश अब जागकर खड़ा हो रहा है।''

यह कथा है इस अनन्त शक्तिसम्पन्न देश के जागरण की। इस जागरण में स्वामी विवेकानन्द का योगदान ही इस लेख का विषय है। स्वामी विवेकानन्द के प्रभाव का प्रसार तथा प्रकृति समझने के लिए जरूरी है कि पहले हम विचारों की शक्ति से परिचित हों, साथ ही नए विचारों का उद्भव कैसे होता है, यह जान सकें।

विचारों की शक्ति

यदि हम अपने दैनन्दिन जीवन का विश्लेषण करें, तो हम देखेंगे कि हमारे सभी क्रियाकलाप और प्रवृत्तियाँ कुछ विचारों और सिद्धान्तों से परिचालित होती हैं। हम जब भी असफल होते हैं, थोड़ा आत्मनिरीक्षण करने पर हम देखेंगे कि हम इसलिये असफल हुए, क्योंकि हमने कुछ गलत सिद्धान्तों या विचारों का अनुसरण किया। अपनी विचार प्रक्रिया बदल देने पर हम पुन: सफल हो सकते हैं। यह नियम जैसे व्यक्ति पर लागू होता है, वैसे ही समाज और समूचे राष्ट्र पर भी लागू होता है। विचार-शक्ति के कारण अत्यन्त पिछड़ा देश किस प्रकार से उन्नत हो सकता है, अरब देश इसका एक अच्छा उदाहरण हो सकता है। ६वीं शताब्दी तक अरब खानाबदोश जातियों (Bedouins) का एक अनजान देश था। ठीक तभी मुहम्मद का आविर्भाव हुआ, जिन्होंने लोगों को नये विचार दिए। इसके फलस्वरूप पचास वर्षों के भीतर अरब ने समूचे मध्य एशिया को अधिकृत कर एक नयी सभ्यता का निर्माण किया। हाल के वर्षों में लेनिन के नेतृत्व में सोवियत यूनियन का उत्थान तथा मार्क्सवाद के कारण माउ जी डोंग के नेतृत्व में चीन का उत्कर्ष दर्शाते हैं कि किस प्रकार विचार-शक्ति समूची जाति का भाग्य बदल सकती है।

इस तथ्य को आधुनिक विज्ञान के दृष्टिकोण से भी देखा जा सकता है। विज्ञान के मूलभूत नियमों में से एक क्रमविकास का सिद्धांत है। सभी प्रणियों को क्रमविकास से होकर गुजरना पड़ता है। लेकिन पशुओं में तथा पादपों में क्रमविकास केवल स्थूल शरीर तक ही सीमित रहता है, जबकि मनुष्यों में (जूलियन हक्सले जैसे जीव विज्ञानी के अनुसार) मुख्य रूप से यह मनो-सामाजिक होता है। पचास वर्ष से भी पहले जूलियन हक्सले लिखते हैं, - ''मनुष्य का क्रमविकास जैविक नहीं, बल्कि मनो-सामाजिक होता है; संस्कृति और परम्पराओं के द्वारा यह क्रियान्वित होता है, जिसके अन्तर्गत ज्ञान, विचार, धार्मिक विश्वास आदि भाव समष्टि का नवविकास तथा पुनर्निर्माण आता है। तात्पर्य यह है कि क्रमविकास भावजगत से सम्बन्धित है न कि जैविक या पंचभौतिक जगत से।''

यह मनुष्य का मनो-सामाजिक क्रमविकास ही है, जिसको हम मानव-इतिहास कहते हैं। असल में मनुष्य के इतिहास को हम विचारों का इतिहास कह सकते हैं, जैसा कि जर्मन दार्शनिक हेगेल कहते हैं, ''वास्तव में सम्पूर्ण इतिहास विचारों का इतिहास मात्र है।''

इस प्रसंग में कुछ मूलभूत प्रश्न उठते हैं – क्या इतिहास परमकारणवादी है अर्थात् मानव सभ्यता का क्या कोई विशेष उद्देश्य या परम अर्थ है? ऐसी कौन-सी शक्तियाँ हैं, जो इतिहास को नियंत्रित करती हैं? किन कारणों से किसी सभ्यता का पतन होता है? पुन: किन साधनों से कोई सभ्यता अपने आप को पुनरुज्जीवित कर सकती है? हेगेल, अर्नाल्ड टायन्बी, ओसवाल्ड स्पेंग्लर, पिटिरिम सोरोकिन और अन्यान्य सुविख्यात चिन्तकों और इतिहास के दार्शनिकों ने उपरोक्त प्रश्नों का उत्तर देने का प्रयास किया हैं। उनके अध्ययन से ऐतिहासिक प्रगति के सम्बन्ध में कुछ निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं।

१. मानवता विभिन्न सभ्यताओं में विभक्त है। प्रत्येक सभ्यता का एक विशेष रुझान, एक साझा स्वार्थ तथा एक विशेष आदर्श होता है। ग्रीक सभ्यता का रुझान बाह्य जगत का गहन अनुसंधान था। हिब्रू सभ्यता एकेश्वरवाद और नैतिक मूल्यों के इर्द-गिर्द केन्द्रित थी। चीनी सभ्यता मुख्यतया समाज और सामाजिक सम्बन्धों को लेकर सचेतन थी और भारतीय सभ्यता का मुख्य आदर्श आध्यात्मिकता था।

२. प्रत्येक सभ्यता को विभिन्न अवस्थाओं से गुजरना पड़ता है, जिन्हें काल या युग कह सकते हैं। प्रत्येक युग एक विशेष युगधर्म होता है। युगधर्म से तात्पर्य तत्कालीन बौद्धिक, नैतिक तथा सांस्कृतिक वातावरण से है। उस समय

के विचार, धार्मिक आस्था तथा नैतिक मूल्य लोगों को सर्वाधिक प्रभावित करते हैं।

३. प्रत्येक सभ्यता का ही एक पतन काल होता है, जो तत्कालीन लोगों के चारित्रिक पतन, विदेशी आक्रमण, गृहयुद्ध और जातीय अन्तर्द्वन्द्व का कारण होता है। अर्नाल्ड टॉयनबी के अनुसार जो सभ्यताएँ चारित्रिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक उपाय पर्याप्त मात्रा में खोज लेती हैं, वे ही इस संकट से उबरकर संजीवित हो सकती हैं।

४. यह नवजीवन निम्नलिखित कारणों से होता है – (क) पतनोन्मुखी सभ्यता किसी वीर्यशाली और विकसित सभ्यता के सम्मुखीन हो। (ख) किसी महापुरुष का आविर्भाव, जिन्हें अवतार कहते हैं, जो तत्कालीन समाज की आवश्यकता और अवस्था के अनुसार सन्देश देतें हैं, वे अपने कुछ अनुयाइयों को अनुप्रेरित करते हैं, जो उनका सन्देश जन-साधारण तक पहुँचाते हैं। प्रारम्भ में उनका दल छोटा होता है, जिनको टायनबी अल्पसंख्यक रचनात्मकता (creative minority) कहते हैं। लेकिन जैसे–जैसे लोग इस अभिनव संदेश के प्रभाव में आते हैं, वैसे-वैसे सभ्यता का पुनरुज्जीवन होता है।

(ग) बहिरागत संस्कृति अथवा विचारधारा का सम्पर्क रूस के लेनिन और चीन के माओ जैसे शक्तिशाली राजनैतिक नेताओं को जन्म देता है, जो प्राचीन सभ्यता की जगह नयी संस्कृति के निर्माण की चेष्टा करते हैं।

स्वामी विवेकानन्द ने जिनको इतिहास का गहरा बोध था, उपरोक्त ऐतिहासिक गतिविधियों को अपने व्याख्यानों और लेखों में बहुत जगह व्यक्त किया है। कैलीफोर्निया में १९०० ई. में दिए गये 'संसार के महान शिक्षक' नामक व्याख्यान की भूमिका में वे कहते हैं -

'विश्व चक्राकार तरंगों की भाँति गतिशील है ... समष्टि के लिए जो विधान सत्य है, वही व्यष्टि के लिए भी सत्य है। मानव समाज के सभी क्षेत्रों में भी यही तरंगवत् उत्थान और पतन की गति है। राष्ट्रों के इतिहास भी इसी उत्थान और पतन की कहानियाँ हैं। वे उठते और गिरते हैं... धार्मिक जगत में भी अनवरत रूप से यही क्रिया चल रही है। प्रत्येक जाति के आध्यात्मिक जीवन में पतन और उत्थान के युग होते हैं। जब जाति की अवनति होती है, तब लगता है कि जाति की जीवन शक्ति नष्ट हो गयी है, वह छिन्न-भिन्न हो गयी है। किन्तु वह पुन: शक्ति संचय करती है और उन्नति करने लगती है। जागृति की एक विशाल लहर उठती है और यही देखा जाता है कि इस विशाल लहर के उच्चतम शिखर पर कोई दिव्य महापुरुष विराजमान हैं। एक ओर जहाँ वे उस तरंग, उस जाति के अभ्युत्थान के शक्तिदाता होते हैं, वहीं दूसरी और उस महती शक्ति के कारण होते हैं, जो (शक्ति) उस अभ्युदय, उस तरंग का मूल है। इस प्रकार वे एक दूसरे पर क्रिया-प्रतिक्रया करते हैं – परस्पर के स्रष्टा और स्रष्ट हैं। वे एक ओर समाज को अपनी महती शक्ति से प्रभावित करते हैं और दूसरी ओर समाज ही उनकी इस प्रचंड शक्ति के आविर्भाव का कारण होता है।

स्वामी विवेकानन्द का विश्वास था कि भारत का पुनर्जागरण मानवता के इतिहास में एक नए युग का निदर्शन है। इस नए युग का युगधर्म आध्यात्मिक चेतना का जागरण होगा। स्वामीजी जानते थे कि श्रीरामकृष्ण ही इस नए युग के अग्रदूत होंगे और उनके उपदेश इसके पथ-प्रदर्शक।

भारत का त्रिविध जागरण

यदि भारत के पिछले २०० वर्षों के इतिहास का अध्ययन किया जाय, तो हम देखेंगे कि यह देश तीन कालखण्डों में तीन प्रकार के जागरण काल से गुजरा है –

१. १९वीं शताब्दी में आध्यात्मिक जागरण

२. २०वीं शताब्दी में राजनैतिक जागरण

३. २१वीं शताब्दी में बौद्धिक जागरण

यहाँ यह दर्शाने की चेष्टा की गयी है कि किस प्रकार से स्वामी विवेकानन्द का जीवन और उनकी वाणी ने इन तीनों प्रकार के जागरण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी है।

१९वीं शताब्दी में आध्यात्मिक जागरण

जैसाकि स्वामी विवेकानन्द बार-बार कहते हैं कि भारतीय संस्कृति का मूल स्वर, उसकी नींव, उसका जीवन-रस आध्यात्मिकता है। अत: स्वाभाविक रूप से ही सुदीर्घ निद्रा से इसका प्रथम पुनर्जागरण आध्यात्मिक जागरण ही होगा। भारत के विदेशी संस्कृति के साथ संघर्ष ने ही इस जागरण को प्रेरित किया।

पाश्चात्य संस्कृति की तीन चुनौतियाँ

अंग्रेजों से पराजय, राजनैतिक पराभव और अर्थनैतिक हानि के अलावा भारतीय समाज को १९वीं शताब्दी के प्रारम्भ में पाश्चात्य संस्कृति के आक्रमण का भी सामना करना पड़ा था। यह अँग्रेजी शिक्षा की ही देन थी कि भारतीय अपनी शोचनीय परिस्थितियों की गम्भीरता को समझ सके थे। भारतीय समाज ने तीन मोर्चों पर पाश्चात्य संस्कृति

का सामना किया। पहला मोर्चा था, पश्चिमी विज्ञान तथा तर्कसंगत विचारों का। उन दिनों धार्मिक आस्था, चिन्तन और जन-साधारण के जीवन का मनोभाव धार्मिक मतवाद, शास्त्रीय ज्ञान, पारमार्थिक सत्य पर आधारित दार्शनिक तत्त्वों, पौराणिकता और बड़ी मात्रा में अंधविश्वासों में आबद्ध था। कान्ट, मिल, स्पेन्सर, बेन्थम, आदि पश्चिमी चिन्तकों द्वारा संस्तुत विज्ञान के नि:संदिग्ध सत्य तथा सुंदर अकाट्य युक्तियों और प्रगतिवादी युक्तिपूर्ण विचारधारा ने भारतीय जन मानस को एक गहरा झटका दिया, जो उस समय आत्मतृप्ति की भावना से ग्रसित था। इसने न केवल भारतीयों को अपनी धार्मिक आस्था, दार्शनिक पूर्वधारणा आदि पर फिर से सोचने को विवश किया, बल्कि युक्तिपूर्ण विचारधारा का नया मार्ग भी प्रशस्त किया। यही पहली चुनौती थी, जिससे भारतीय समाज सम्मुखीन हुआ।

दूसरी चुनौती थी पश्चिमी सामाजिक मानदंड, नैतिक मूल्य तथा व्यवहार पद्धति, जो लोकतान्त्रिक सिद्धान्तों, जैसे समानता, सामाजिक न्याय, व्यक्ति स्वातंत्र्य (विशेषकर नारियों) पर आधारित थी। यह जाति, पुरोहितवाद, नारियों की उपेक्षा, छुआछूत, विधवाओं का अग्निदाह आदि सामाजिक रोगों से ग्रस्त भारत की बद्ध समाज व्यवस्था के सर्वथा विपरीत थी।

पाश्चात्य संस्कृति की तीसरी चुनौती थी, एक नए धर्म का प्रवेश, जो प्रेममय असहायों तथा पापियों के तारक ईश्वर की धारणा पर आधारित था और यह मिशनरियों के सेवाकार्यों और प्रभावी प्रचार के द्वारा संवर्धित हो रहा था।

तीन आन्दोलन

जब कोई समृद्ध संस्कृतियुक्त बहुत विकसित सभ्यता किन्हीं चुनौतियों का सामना करती है, तब यह प्रतिक्रियास्वरूप आत्मशोधन प्रणाली (auto-corrective reaction) को विकसित करती है, उसे गति प्रदान करती है। विदेशी चुनौतियों का मुकाबला करने के लिये भारतीय समाज के द्वारा ये प्रतिक्रियाएँ तीन धाराओं में हुईं। भारत के महान कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने इन तीन प्रतिक्रियाओं को तीन आन्दोलन की संज्ञा दी है। 'मेरा जीवन' नामक वक्तृता में वे कहते हैं, "जब मेरा जन्म हुआ, तब मेरे देश के जीवन में तीन आन्दोलन की धाराएँ मिली थीं – राजा राममोहन राय का धार्मिक आन्दोलन, बंकिमचन्द्र चटर्जी के नेतृत्व में साक्षरता आन्दोलन और राष्ट्रीय आन्दोलन, जो पूर्णतया राजनैतिक नहीं था। ठाकुर द्वारा निर्देशित उपरोक्त 'धार्मिक' आन्दोलन वास्तव में सामाजिक-धार्मिक (socio-religious) आन्दोलन था।

जैसाकि पहले ही कहा जा चुका है कि विदेशी संस्कृति के प्रतिक्रियास्वरूप भारतीय समाज द्वारा तीनों प्रकार के आन्दोलन आत्मशोधन प्रक्रिया के अन्तर्गत ही थे। यहाँ यह बताना आवश्यक है कि ये आन्दोलन बंगाल तथा दो-तीन अन्य प्रान्तों तक ही सीमित थे। अखिल भारतीय स्तर पर इनका प्रभाव नगण्य था। स्वामी विवेकानन्द के योगदान का मूल्यांकन करने के लिए इन आन्दोलनों का यहाँ संक्षिप्त विवरण देना अनुचित न होगा।

सामाजिक-धार्मिक आन्दोलन

इस आन्दोलन का श्रीगणेश राजा राममोहन राय (१७७२-१८३३) ने किया था। वे निस्सन्देह बहुमुखी प्रतिभासम्पन्न थे। उन्हें अंग्रेजी, संस्कृत तथा पारसी का अच्छा ज्ञान था। उनका मुख्य उद्देश्य भारतीयों को उनके अध:पतित अवस्था से अवगत कराना तथा उनमें सामाजिक चेतना का विकास करना था। यद्यपि वे उपनिषदों का समादर करते थे, तथापि उन्होंने वेदान्त को हिन्दुओं का मुख्य दर्शन स्थापित करने का कोई प्रयास नहीं किया, जैसाकि परवर्ती काल में स्वामी विवेकानन्द ने किया था। राममोहन राय का व्यक्तिगत जीवन भी निस्सन्देह स्पष्ट नहीं था और उसमें बहुत विरोधाभास था। जब ईस्ट इंडिया कंपनी ने कोलकाता में संस्कृत कालेज खोलने का निश्चय किया था, तब राममोहन राय ने इसका विरोध करते हुए ब्रिटिश शासन को लिखा था, इस समय हमें गणित, विज्ञान, रसायन शास्त्र और विज्ञान की अन्य शाखाओं के ज्ञान की आवश्यकता है, न कि संस्कृत शिक्षा की, क्योंकि संस्कृत शिक्षा से देश का कोई भला होने वाला नहीं है। उनके अनुसार ब्रिटिश राज भारत के लिए वरदान था और वे स्वयं पाश्चात्य संस्कृति के गुणग्राही थे। अपने प्रगतिशील विचारों के प्रचार के लिए उन्होंने 'आत्मीय सभा' नामक संगठन की स्थापना की, जो बाद में 'ब्रह्म समाज' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

राजा राममोहन के बाद महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर (१८१७-१९०५) ने ब्राह्म समाज का नेतृत्व किया। आरम्भ में महर्षि उपनिषदों से प्रभावित अवश्य थे, लेकिन बाद में उन्होंने उपनिषदों को धर्मीय क्षेत्र में अंतिम प्रमाण (highest authority) मानने से अस्वीकार कर दिया था, इसके बजाय तर्क और विचार-बुद्धि ही ब्राह्म समाज में अंतिम प्रमाण माने जाने लगे।

केशवचन्द्र सेन (१८३८-१८८४) के १८५७ में ब्राह्म समाज में आने के बाद ब्राह्म आन्दोलन ने एक नया मोड़ लिया। उन्होंने हिन्दू रीति-रिवाजों जैसे यज्ञोपवीत संस्कार और जाति व्यवस्था को अस्वीकार कर दिया। पुन: यद्यपि उन्होंने ईसा मसीह में ईश्वरसत्ता को स्वीकार नहीं किया, लेकिन उनका विश्वास था कि ईसा मसीह भारत के आदर्श हैं और उनका जीवन तथा उपदेश हमें अवश्य अनुकरण करना चाहिए। उनकी दृष्टि में ब्रिटिश राज 'ईश्वरीय विधान' था, जो सर्वथा भारतीयों की भलाई के लिए ही था। १८६६ ई. में केशव चन्द्र ने 'आदि ब्राह्म समाज' से अलग होकर 'भारतीय ब्राह्म समाज' नामक संस्था स्थापित की, लेकिन १८७८ में इनके कुछ अनुगामियों ने इनसे अलग होकर आनन्द मोहन बोस, पंडित शिवनाथ शास्त्री, विजयकृष्ण गोस्वामी और अन्यान्य के नेतृत्व में 'साधारण ब्राह्म समाज' की स्थापना की।

यहाँ इस प्रसंग में एक और सामाजिक नेता का उल्लेख करना अनुचित न होगा, जिनका नाम ईश्वरचन्द्र विद्यासागर (१८२०-१८९१) है। यद्यपि वे अपने समय के संस्कृत के महान पंडित थे और हिन्दू रीति-रिवाजों का कट्टरता से पालन करते थे। फिर भी ईश्वर पर से उनका विश्वास उठ गया था और वे अपने आप को नास्तिक कहने में नहीं हिचकिचाते थे। भारतीय जागरण में उनका योगदान समाज सुधार, जैसे विधवा विवाह तथा शिक्षा के प्रसार में है।

ब्राह्म समाज द्वारा हिन्दू संस्कारों तथा रीति-रिवाजों के अस्वीकार ने सनातन हिन्दू समाज के एक वर्ग में तीव्र प्रतिक्रिया उत्पन्न की, जिसने पंडित शशधर तर्कचूडामणि के नेतृत्व में हिन्दू परम्पराओं के रक्षण का प्रयास किया और इसके लिए 'धर्म सभा' नामक संगठन की स्थापना की।

उपरोक्त विवरण १९वीं शताब्दी में बंगाल की अवस्था को दर्शाता है। ऐसे ही समाज-धार्मिक आन्दोलन भारत के अन्य प्रान्तों में आरम्भ हो चुके थे – दक्षिण में थियोसोफिकल सोसाइटी, पश्चिम भारत में प्रार्थना सभा और उत्तर भारत में आर्य समाज। इनमें से प्रथम दो आन्दोलन सनातन हिन्दू धर्म के अंगस्वरूप ही थे, लेकिन दयानन्द सरस्वती द्वारा स्थापित (१८७५) आर्य समाज ने हिन्दू धर्म के कुछ महत्त्वपूर्ण पक्ष, दर्शन तथा सामाजिक विधान का अस्वीकार कर दिया और अन्त में यह क्षीण होकर हिदू धर्म के अन्तर्गत एक सम्प्रदाय मात्र रह गया।

यह कहना न होगा कि तीनों आन्दोलन मतवाद तक ही सीमित थे और इनमें सर्व-भारतीयता का अभाव था। **(क्रमशः)**

मनोबल–आत्मविश्वास, बढ़ाते हैं जीने की आस

डॉ. शरत् चन्द्र पेंढारकर

आर्थर ऐश इटली का प्रसिद्ध टेनिस खिलाड़ी था। १९८३ में उसके हृदय का आपरेशन हुआ। रक्त की कमी के कारण उसे रक्त देना पड़ा, किन्तु गलती से दूषित रक्त देने से उसे कैन्सर हो गया। उसकी चिकित्सा होने लगी। किन्तु इस रोग की कोई रामबाण दवा न होने से वह जीवन-मृत्यु से संघर्ष कर रहा था। जब खेल-प्रेमियों को ज्ञात हुआ, तो वे बड़े दुखी हुए। उसके खेल के प्रशंसक एक बालक ने उसके शीघ्र स्वस्थ होने की कामना करते हुए उसे पत्र लिखा, "मेरी समझ में नहीं आता कि भगवान ने कैसे इतने निष्ठुर होकर यह बीमारी आपको दे दी।"

ऐश ने पत्र के उत्तर में लिखा, "शुभकामना देने के लिए धन्यवाद। किन्तु शायद तुम नहीं जानते कि ५ करोड़ लोग टेनिस के प्रेमी हैं। ५ करोड़ लोग इस खेल को खेलते हैं और इसका अभ्यास भी करते हैं। लेकिन ५० हजार लोग ही प्रतियोगिताओं में भाग लेते हैं। इनमें से पिछले ग्रैन्ड स्लैम के लिए केवल ५ हजार खिलाड़ी चुने गए, जिनमें से ५० खिलाड़ी विम्बल्डन के पात्र हुए। केवल ४ सेमीफाइनल में और २ फाइनल में पहुँचे। फाइनल मैच जीतने में मैं सफल हुआ। तब क्या मैंने मन ही मन ईश्वर से पूछा, 'पचास हजार खिलाड़ियों में से पुरस्कार के लिए तुमने मुझे ही क्यों चुना?' जब आज मुझे कैन्सर हुआ, तो उसे मैं किस मुँह से पुछूँ कि उसने इस बीमारी के लिये मुझे ही क्यों चुना? उसे मैं निष्ठुर कैसे कहूँ? क्योंकि उसने ही मुझे चैम्पियन बनाया था। कष्ट और पीड़ा मनुष्य को मानवता का पाठ पढ़ाते हैं और उसके व्यक्तित्व को उज्ज्वल बनाते हैं। ऐसे समय हमें ईश्वर पर विश्वास रखकर मनोबल खोना नहीं चाहिए। हमें दुखी और निराश न होकर दृढ़ इच्छाशक्ति के साथ संकटों का सामना करना चाहिए। इसका तुम हमेशा ध्यान रखना।"

सुख-दुख मानव जीवन के अभिन्न अंग हैं। मनुष्य उनसे बच नहीं सकता। आधि-व्याधि, आपत्ति-विपत्ति, असफलता, ये मनुष्य को हताश कर देती हैं। निराशा के घटाटोप में कुंठा, विक्षोभ, उद्विग्नता हमें असहाय बना देती है। इनसे उबरने के लिये हमें ऊँचा मनोबल रखना चाहिए। इससे प्राप्त ऊर्जा और शक्ति हमें जुझारू बनाती है और विजय पथ की ओर ले जाती है। OOO

सारगाछी की स्मृतियाँ (६८)

स्वामी सुहितानन्द

(स्वामी सुहितानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ-मिशन के उपाध्यक्ष हैं। महाराजजी जगजननी श्रीमाँ सारदा देवी के शिष्य स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज के अनन्य निष्ठावान सेवक थे। उन्होंने समय-समय पर महाराजजी के साथ हुए वार्तालापों के कुछ अंश अपनी डायरी में गोपनीय ढंग से लिखकर रखा था, जो साधकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। 'उद्बोधन' बँगला मासिक पत्रिका में यह मई-२०१२ से अनवरत प्रकाशित हो रहा है। पूज्य उपाध्यक्ष महाराज की अनुमति से इसका अनुवाद रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द और वाराणसी के रामकुमार गौड़ ने किया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' में क्रमश: प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

स्वामी प्रेमेशानन्द

४-०३-१९६१

सेवक - 'श्रीरामकृष्णवचनामृत' का पाठ करने पर लगता है कि ठाकुर मानो विभिन्न समय में भिन्न-भिन्न भाव में रहते थे।

महाराज – ठीक समझे हो, वे अखण्ड सच्चिदानन्द रामकृष्ण हैं न, वे रामकृष्ण के कलेवर में अपना संदेश दे गए हैं। किन्तु जब वे गदाधर चटर्जी हैं, तब वे अखण्ड सच्चिदानन्द नहीं हैं, तब वे भक्त हैं। वे ही भक्त जब सर्वभूतस्थमात्मानम् होते हैं, तब वे ज्ञानी हैं, जब निर्गुण में चले जाते हैं, तब वे अखण्ड सच्चिदानन्द हो जाते हैं। किन्तु वे ही भक्त स्वेच्छा से ऊपर-नीचे (भावराज्य में) चढ़-उतर सकते हैं। इसीलिए वे अवतार हैं, किन्तु साधारण जीव के पास एक बार ऊपर उठने के बाद फिर नीचे आने की शक्ति नहीं रहती।

इहैव तैर्जित: सर्गो येषां साम्ये स्थितं मन:।
निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद् ब्रह्मणि ते स्थिता:।।

(गीता, ५.१९)

जिसका मन समता में रहता है, अर्थात् कभी किसी भी वस्तु से विचलित नहीं होता है, वही व्यक्ति इस जगत से, इस जन्म-मरण से मुक्त हो जाता है। ब्रह्म निर्दोष है, अर्थात् वहाँ कोई गति नहीं है, चंचलता नहीं है, इसीलिए योगी का मन भी चंचलरहित नहीं होने पर अचंचल ब्रह्म से संयुक्त नहीं हो सकता।

किसी व्यक्ति के साथ तर्क-वितर्क करने के बाद उस दिन किसी प्रकार भी मन को एकाग्र नहीं कर सकोगे, और अधिक होने पर सम्भवत: तीन दिनों तक उसका प्रभाव बना रहेगा। मन को अचंचल, शान्त रखने के लिए ही एकान्त वास किया जाता है। 'संसार का कोई भी, कुछ भी मेरा नहीं है, इसलिए संसार के जलकर राख हो जाने पर भी रंचमात्र भी मेरे चित्त को व्यग्र, चंचल नहीं होना चाहिये, इसी भाव में रहने के लिये ही संन्यास आश्रम है।

अभी भी कैलास मठ में दिन भर ब्रह्मविद्या की चर्चा होती रहती है। हमारे यहाँ सभी लोग बिना तैयारी के ही आते हैं। पहले संसार-भोग होना चाहिए। हमारे सभी लोग बुभुक्षु (भूखे) हैं। ब्रह्मविद्या सिखाई नहीं जा सकती। प्रतिभाशाली होने पर भी खाने-पीने की चीजों की ओर आकर्षण रहने से, अच्छे-अच्छे जूतों का शौक रहने से अथवा मान-प्रतिष्ठा, सुख की कामना आदि के नष्ट नहीं होने से भगवान के प्रति आकर्षण नहीं होता। तत्पश्चात् उपासना करते-करते थोड़ा भगवान की ओर आकर्षण होगा। तब सत्-असत् विचार करके योग में स्थित होने पर ब्रह्मविद्या का अनुसन्धान होगा। एक दण्डी सम्प्रदाय है। वे लोग दण्ड को नहीं छोड़ते हैं। वे लोग ब्राह्मण के अतिरिक्त अन्य किसी को संन्यासी नहीं बनाते हैं। पहले यह उद्देश्य ठीक ही था कि ब्राह्मण के अतिरिक्त अन्य कोई संन्यास के उपयुक्त नहीं है। किन्तु इस समय तो वे ही यज्ञोपवीत धारण करके खड़े हैं।

न प्रहृष्येत् प्रियं प्राप्य नोद्विजेत् प्राप्य चाप्रियम्।
स्थिरबुद्धिरसम्मूढो ब्रह्मविद् ब्रह्मणि स्थित: ।।

(गीता, ५.२०)

साधक इसी तत्त्व की साधना करते-करते, अभ्यास करते-करते जब सिद्ध हो जाएँगे, तब यही उनकी जीवन-धारा हो जायेगी। असली बात है कि दो चीजें है – भीतर और बाहर। भीतर जितना ही रस मिलेगा, बाहरी चीजों के प्रति उतनी ही उदासीनता आएगी। बाहरी वस्तुओं से उद्विग्न होने पर भीतर शान्ति कम मिलेगी।

''आद्यन्तवन्त: = अस्थायी (अनित्य), 'ब्रह्म भूतोऽधिगच्छति' = वे ब्रह्मस्वरूप 'निर्दोष' हो जाते हैं। 'सर्वभूतहिते रता:' = (सभी प्राणियों के कल्याण में निरत) । इसके ही अभ्यास के लिये स्वामीजी हमलोगों को कार्य दे गए हैं।

सभी प्राणियों के भीतर जो एक चैतन्य सत्ता है, उसकी ही पूजा यह रामकृष्ण मिशन करता है।

यं संन्यासमिति प्राहुर्योगं तं विद्धि पाण्डव।
न ह्यसंन्यस्तसंङ्कल्पो योगी भवति कश्चन।। (गीता-६/२)

जब मन में सम्पूर्ण रूप से कामनाओं, वासनाओं की तरंग नहीं उठेगी, तब योगारूढ़ हो जाओगे। योगारूढ़ हुए बिना कर्मत्याग करने से बड़ा अहित हो जायेगा। हम लोगों को कर्म करते देखकर उधर के (हरिद्वार-ऋषिकेश के) साधु पहले हमें थोड़ी हीन दृष्टि से देखते थे। बाहर से देखने पर जो कार्य करते हैं, उन्हें थोड़ा बहिर्मुखी माना जाता है तथा जो लोग कार्य न करके चुपचाप बैठे रहते हैं, उन्हें अन्तर्मुखी वृत्ति का समझा जाता है, भले ही वे तमोगुण से भरे हों।

मास्टर महाशय भी कर्म करने के विरुद्ध थे। वे कहते थे – पहले ईश्वर, उसके बाद कर्म। श्रीमाँ की बात को तो उन्होंने मान लिया, किन्तु उन्होंने अपना हठ नहीं छोड़ा।

यह ठीक है कि ईश्वर का तत्त्व अच्छी प्रकार न जानकर कर्म करने से व्यक्ति कर्म-बंधन में फँस जाता है, किन्तु ईश्वर को जानकर निष्कामभाव से कर्म करते-करते कर्म-वासना नष्ट हो जाती है। इसीलिए तो स्वामीजी ने हम लोगों को यह कार्य दिया है। इसके साथ भक्ति और योग एवं ज्ञान-विचार नहीं रहने से उन्नति नहीं हो सकती। 'न प्रहृष्येत् प्रियं प्राप्य' – ऐसी भावना नहीं होने से एकान्तसेवी होने से भी क्या होगा? ध्यान करने बैठने पर मन के थोड़ा शान्त होते ही मन के भीतर से बुलबुलों की तरह एक-एक करके कर्म-वासना उठती रहेगी, मन में लगेगा कि अरे, वह काम तो हुआ ही नहीं। हो सकता है, तुम ध्यान कर रहे हो, किन्तु मन में लोक-प्रसिद्ध होने की वासना है।

कई लोग थोड़ी-बहुत ज्योति आदि अथवा रूप का दर्शन करके ही समझते हैं कि सब हो गया, बहुत कम लोग ही अन्त तक जा सकते हैं। गीता में भगवान कहते हैं – 'कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः।' – कोई-कोई मुझे तत्त्व से जानता है।

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादेयत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः।। (गीता, ६.५)

'भगवान की इच्छा' 'भाग्य-लेख' मानकर ही इतने दिन लोगों का विश्वास था, यह बात समझ ही नहीं सकते थे। कैसे समझेंगे? मन्टू के पिताजी तो कितने चरित्रवान पंडित थे, किन्तु भागवत-पाठ करते समय लोग भिखारी की तरह उन्हें दो पैसा दे देते हैं! वहीं जमींदार का आवारा-लुच्चा लड़का राजमहल में रहता है। विवश होकर ही मनुष्य भाग्य-लेख कहता है। समाज में कोट-पेंट पहने हुए विद्वानों के बीच अंग्रेजी-शिक्षित सज्जनों का अधिक आदर होता है। सामाजिक परिस्थिति के कारण यह सब हुआ है।

'परमात्मा समाहितः' – अन्त तक जाना चाहिए, 'कश्चिमन्मां वेत्ति तत्त्वतः – ज्योति (दर्शन) में अटककर रह जाने से कुछ नहीं होगा। 'ज्ञानविज्ञान तृप्तात्मा'– उस पथ के सम्बन्ध में एवं पथ की बाधा और सम्पदा के सम्बन्ध में केवल जानना ही नहीं, उसके बारे में दृढ़ निश्चय होना चाहिए, पक्की धारणा होनी चाहिए। जैसेकि मानचित्र देखकर, उस देश का विवरण सुन-सुनकर लगता है कि मैं उस देश का सब कुछ देख रहा हूँ।

६-३-१९६१

महाराज –''साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते।''

पुण्यात्मा और पापी में समभाव रखना। इस तकनीक-विशेष को नहीं जानने से समभाव नहीं आता है। यह देह-मन-बुद्धि रथी आत्मा की तरह कार्य करते हैं। वह क्या करेगा, उसकी गाड़ी तो खराब है। मन-बुद्धि पूर्व संस्कार के कारण अभी इस तरह के हो गए हैं। कर्म कब आरम्भ हुआ है, उसकी ठीक जानकारी नहीं है। वह बेचारी बुद्धि तो असहाय है। पूर्वसंस्कारों की प्रेरणा से उसकी गाड़ी इस प्रकार की हो गई है। इस प्रकार रहने पर समभाव सम्भव है, 'दुखसंयोगवियोगं – अपनी साधारण अवस्था में हम लोग दुख के साथ संयुक्त होते हैं, किन्तु आत्मरति अवस्था में उस दुख के साथ संयोग अवस्था से वियोग हो जाता है अथवा आत्मानन्द में विभोर योगी दुख के साथ संस्पर्श होने पर भी उससे वियुक्त रहते हैं अर्थात् उस दुख का कारण उन्हें स्पर्श नहीं कर सकता। **(क्रमशः)**

पीछे मुड़कर देखने की आवश्यकता नहीं है। आगे बढ़ो। हमें अनन्त शक्ति, अनन्त उत्साह, अनन्त साहस तथा अनन्त धैर्य चाहिए। केवल तभी महान कार्य सम्पन्न होंगे।

– स्वामी विवेकानन्द

योगशास्त्र में प्राणायाम

स्वामी ब्रह्मेशानन्द

रामकृष्ण अद्वैत आश्रम, वाराणसी

(स्वामी ब्रह्मेशानन्द जी महाराज रामकृष्ण मिशन के वरिष्ठ संन्यासी हैं। ये रामकृष्ण मठ चेन्नई से प्रकाशित होनेवाली 'वेदान्त केसरी' मासिक पत्रिका के पूर्व सम्पादक थे। इनकी पातंजल योग विषयक प्रवचनमाला काफी लोकप्रिय हुई है। पातंजल योग से सम्बन्धित तप, स्वाध्याय, शरणागति आदि कई लेख इनकी पुस्तक 'आनन्द की खोज' में पहले से ही प्रकाशित हो चुके हैं। अब योग के शेष अन्य विषय जो अब तक अप्रकाशित हैं, महाराजजी ने विशेष रूप से विवेक ज्योति के पाठकों के लिये लिखे हैं, उन्हें प्रकाशित किया जा रहा है। - सं)

प्राणायाम पातंजल अष्टांग योग का चौथा अंग है। इसका अर्थ है प्राण का संयमन या नियमन। योगासनों के साथ-ही-साथ प्राणायाम में भी आजकल लोगों की रुचि बढ़ गयी है और बहुत-से लोग दोनों का नियमित अभ्यास शारीरिक स्वास्थ्य और मानसिक सन्तुलन हेतु करते हैं।

प्राण क्या है? प्राण का अर्थ श्वास-प्रश्वास भी है और शारीरिक और मानसिक शक्ति भी। हम पैरों से आवागमन, हाथों से कार्य और मन से चिन्तन, जिस शक्ति से करते हैं, वह भी प्राण कहलाती है। प्राण की कुछ क्रियाएँ हमारे इच्छाधीन होती हैं, जैसे हाथ-पैर चलाना, पलकें खोलना या बन्द करना, आदि। पर हृदय का धड़कना, खाये भोजन को पचाना, मल-मूत्र का त्याग, आदि स्वचालित प्राण की क्रियाएँ अपने आप होती हैं। बिरले कुछ योगियों के द्वारा इनका नियंत्रण स्वेच्छा से भले होवे, पर सामान्यत: वे हमारी इच्छा पर निर्भर नहीं होतीं। शरीर और मन को चलाने वाली इस शक्ति के निकल जाने को ही प्राण-त्याग या मृत्यु कहा जाता है। शरीर-मन को परिचालित करते हुए भी यह शक्ति चेतना नहीं है, उससे भिन्न है। उसमें स्वयं की अपनी कोई इच्छा नहीं होती। वह या तो व्यक्ति की इच्छा पर निर्भर करती है अथवा यंत्रवत् देह के अंगों को चलाती रहती है।

स्वामी विवेकानन्द ने अपने ग्रन्थ 'राजयोग' में इस प्राणशक्ति का विशद विवेचन किया है। उनके अनुसार हमारे भीतर की प्राण शक्ति की तरह बाह्य जगत में भी एक शक्ति है, जो सारे ब्रह्माण्ड को चला रही है। व्यष्टि और समष्टि दोनों एक ही योजना के द्वारा निर्मित हैं और एक-दूसरे से युक्त हैं। हम अपने भीतर की प्राणशक्ति को नियंत्रित करके बाह्य जगत में क्रियाशील प्राणशक्ति को नियोजित कर सकते हैं। स्वामीजी के अनुसार शारीरिक प्राण और मानसिक प्राण दोनों सम्बद्ध हैं। शारीरिक प्राण को नियंत्रित कर मन को भी संयत किया जा सकता है। प्राणायाम का यह एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है। इस प्राण की हमारी देह में सबसे स्पष्ट अभिव्यक्ति श्वास-प्रश्वास के रूप में है। यह हृदय की गति की तरह चलती रहती है। लेकिन हृदय-गति को हम इच्छानुसार रोक या चला नहीं सकते, पर श्वास-प्रश्वास को कुछ सीमा तक रोका और नियंत्रित किया जा सकता है। हठयोग में इस तथ्य का उपयोग देह की अन्य स्वचालित क्रियाओं के नियंत्रण के लिये किया जाता है। हठयोगी पहले श्वास-प्रश्वास को और उसके बाद उसके माध्यम से हृदय, पाचन-क्रिया, आदि अन्य दैहिक क्रियाओं पर विजय प्राप्त करने का प्रयत्न करता है।

वेदान्त के अनुसार आत्मा पर पंचकोषों का आवरण है। अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय। प्राणमय कोष अन्नमय और मनोमय के बीच में है। अत: अन्नमय कोष का प्रभाव उस पर पड़ता है और इसके विपरीत प्राणमय कोष का प्रभाव भी अन्नमय अर्थात देह पर पड़ता है। उसी प्रकार मनोमय कोष अर्थात् मन और प्राणमय कोष अर्थात् प्राण एक-दूसरे से सम्बन्धित हैं और एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं। प्राण के चंचल होने पर मन चंचल होता है। उसी तरह मन के चंचल होने पर हमारा श्वास-प्रश्वास भी बिगड़ जाता है। यदि मन शान्त और संयत हो, तो प्राण भी शान्त और सम हो जाता है। इसीलिए कहा गया है कि एकाग्र चित्त से जप करने से कुम्भक अपने आप हो जाता है। अगर कोई व्यक्ति पूर्ण एकाग्रता से निशाना लगाने का प्रयत्न कर रहा हो, तो उसे भी अपने आप कुम्भक हो जाता है।

पातंजल योगसूत्र में बताये गये प्राण-संयम का उद्देश्य, उस प्रक्रिया के माध्यम से मन के निरोध को आसान करना है। प्रथम पाद के ३४वें सूत्र में कहा गया है – **प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य।** अर्थात् प्राण को बाहर निकालने और रोकने से चित्त प्रसन्न होता है। ध्यान रहे, यह पूरक, कुम्भकयुक्त पूर्ण प्राणायाम नहीं है, फिर भी पतंजलि ने चित्त की प्रसन्नता और स्थिरता के लिए इस विधि का विधान किया है।

श्वास को एक नाक से लेना, दूसरी से निकालना, पुन: बिना रोके दूसरी नासिका से लेना और पहली से बाहर

निकालना, यह क्रिया 'नाड़ी शुद्धि' कहलाती है, जब चारों प्रक्रियाएँ बराबर समय की हों। श्वास-प्रश्वास के काल का निर्णय गिनती या मात्राओं से किया जाता है। ये मात्रायें मन-ही-मन गिनती से की जाती हैं। यदि साँस को आठ मात्रा में भीतर लिया जाय, जिसे पूरक कहते हैं, तो बाहर भी याने रेचक भी आठ मात्रा में होना चाहिये। पुन: विपरीत पूरक और रेचक आठ-आठ मात्रा में करने पर एक नाड़ी शुद्धि प्राणायाम हुआ। प्रारम्भ में ऐसी चार या आठ नाड़ी शुद्धियाँ सुबह-शाम करनी चाहिए। १५ दिन बाद मात्राओं को आठ से बढ़ाकर बारह किया जा सकता है। इसके एक महीने के बाद सोलह मात्राएँ की जा सकती हैं।

यह तो स्पष्ट ही है कि मात्राओं को बढ़ाने पर श्वास-प्रश्वास अत्यन्त सूक्ष्म या धीमा हो जाता है। श्वास के नियंत्रण में यह महत्त्वपूर्ण है। सूक्ष्म अथवा अत्यन्त धीरे किये गये श्वास-प्रश्वास का परिणाम कुम्भक के समान ही होता है और उसमें कुम्भक के खतरे नहीं होते। दीर्घ पूरक और रेचक की तुलना कपास की पूली को पतली करने की क्रिया से की गयी है। जैसे, कपास को दो ओर से धीरे-धीरे खींचने से वह बारीक-से-बारीक होता जाता है, उसी प्रकार श्वास भी अत्यन्त सूक्ष्म हो जाता है।

जैसाकि कहा गया है, काल का अनुपात मात्राओं की गिनती से किया जाता है। इसमें ओम्, ओम्, ओम् की गिनती की जा सकती है अथवा कुछ सद्गुणों को गिना जा सकता है। जैसे, साँस अन्दर लेते समय सोचें कि शान्ति, शक्ति, पवित्रता, प्रेम, अन्दर आ रहे हैं, अगर आठ मात्राएँ हों, तो इनकी गिनती दो बार कर सकते हैं। साँस बाहर निकालते समय सोचें कि अशान्ति, दुर्बलता, अपवित्रता और घृणा बाहर जा रहे हैं। कुछ दिनों तक ऐसा करने के बाद सोचें कि सद्गुण ही अन्दर आ रहे हैं और सद्गुण ही बाहर जा रहे हैं, क्योंकि भीतर अब दुर्गुण नहीं रहे। ये मानसिक सुझाव काफी प्रभावशाली होते हैं।

पतंजलि ने साधनपाद में पाँच सूत्रों में प्राणायाम और उसकी प्रतिष्ठा के फल का वर्णन किया है। दूसरे अध्याय के ४९वें सूत्र में प्राणायाम को श्वास और प्रश्वास की गति-विच्छेद कहा गया है। श्वास लेकर प्रश्वास न करना पूरकान्त गतिविच्छेद है। प्रश्वास अर्थात् साँस निकालकर श्वास रोकना, रेचकान्त गति-विच्छेद है। इन दोनों प्रक्रियाओं में पूरक, रेचक, कुम्भक, ये तीनों एक साथ नहीं होते। अगले सूत्र २.५० में इन तीनों का उल्लेख है – **बाह्याभ्यन्तर स्तम्भ वृत्तिः देश-काल-संख्याभिः परिदृष्टो दीर्घसूक्ष्मः।**

बाह्य वृत्ति अर्थात् रेचक। आभ्यन्तर अर्थात् पूरक। स्तम्भवृत्ति अर्थात् कुम्भक या श्वास रोकना। इस सूत्र में काल, देश और संख्या के माध्यम से इनके निर्धारण का निर्देश है। हृदय से निकलकर रेचक वायु नासिका के सामने बारह अंगुल की दूरी पर समाप्त होती है या पहुँचती है। अभ्यास के द्वारा यह क्रमशः नाभि या उसके भी नीचे के भाग से निकलकर २४ अंगुल पर समाप्त हो सकती है। यह बाहर के देश का निर्णय हुआ। नाभि आदि के क्षोभण अर्थात् हिलने से और बाहर रखे तूल या कपास के हिलने-डुलने से देश-परीक्षा होती है।

प्रणव की दस, बीस या तीस आवृत्ति के द्वारा काल या समय का निर्धारण किया जाता है।

इस महीने प्रतिदिन दस, अगले महीने बीस, उसके बाद तीस आदि रेचक करना, यह संख्या-परीक्षा हुई। कुम्भक में देश-परीक्षा नहीं होती, पर काल और संख्या परीक्षा हो सकती है। जिस प्रकार प्रसारित रूई दीर्घ तथा विरलता के कारण सूक्ष्म हो जाती है, उसी प्रकार प्राण भी देश, काल, संख्या की अधिकता से दीर्घ तथा दुर्लक्षता के कारण सूक्ष्म हो जाता है।

पूरक, कुम्भक और रेचक से युक्त प्राणायाम दो प्रकार का हो सकता है – पूरक के बाद आन्तर कुम्भक युक्त अथवा रेचकान्त बहिर्कुम्भक युक्त। बहिर्कुम्भक युक्त प्राणायाम ही निरापद है। अन्तर्कुम्भक के कुछ खतरे हैं तथा उत्साहपूर्वक दीर्घ अन्तर्कुम्भक से फेफड़े की स्थायी क्षति होने की सम्भावना रहती है।

अगले सूत्र में पूरक-रेचक से निरपेक्ष प्राणायाम बताया गया है – **बाह्याभ्यन्तरविषयक्षेपी चतुर्थः।**

यह एक स्तम्भ वृत्ति है। जब पूरक, रेचक दीर्घकाल के अभ्यास से अतिसूक्ष्म हो जाते हैं, तब उनका अतिक्रमण होकर स्वाभाविक रूप से साँस रुक जाती है, यह करना नहीं पड़ता है अथवा भगवद्भक्ति से श्वास अपने आप रुक जाता है।

अगले दो सूत्रों में प्राणायाम के फलों का वर्णन है – **ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्** और **धारणासु च योग्यता मनसः।** अर्थात् प्राणायाम से ज्ञानावरणीय कर्म का क्षय होता है। मैं शरीर हूँ, मैं इन्द्रियवान हूँ, इत्यादि अज्ञान

शेष भाग पृष्ठ २७० पर

मेरे जीवन की कुछ स्मृतियाँ (६)

स्वामी अखण्डानन्द

(स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज श्रीरामकृष्ण देव के शिष्य थे। परिव्राजक के रूप में उन्होंने हिमालय इत्यादि भारत के कई क्षेत्रों के अलावा तत्कालीन दुर्लंघ्य माने जाने वाले तिब्बत की यात्राएँ भी की थीं। उनके यात्रा-वृत्तान्त तथा अन्य संस्मरण बंगला पुस्तक 'स्मृति कथा' में प्रकाशित हुए हैं, जिनका अनुवाद विवेक ज्योति के पूर्व सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

चैतन्यमय शिव

ठाकुर एक दिन सुबह मुझे काली-मन्दिर में ले गये (मैं पिछली रात वहीं था) । अकेले जाने पर मैं चौखट के बाहर, जहाँ सभी चरणामृत लिया करते हैं, वहीं से दर्शन कर लेता था । मन्दिर में शिव लेटे हुए हैं । उनका सिर दक्षिण की ओर है और पाँव उत्तर की ओर । बाहर से उनका मुख दिखाई नहीं देता था, केवल सिर ही दिखता और ऐसा लगता मानो उन पर सोने की जटाएँ लगी हुई हैं । मैं शिवजी का मुख कभी देख नहीं पाता था । उस दिन ठाकुर मुझे मन्दिर के भीतर ले जाकर बोले, "यह देख, चैतन्यमय शिव !" मुझे ऐसा लगा मानो चैतन्यमय साँस ले रहे हैं । ठाकुर बोले, "देख, देख, ये चैतन्यमय शिव किस प्रकार लेटे हुए हैं !" मैं तो विस्मय-विमूढ़ हो गया । मुझे स्पष्ट बोध हो रहा था कि चैतन्यमय शिव ही लेटे हुए हैं ! इतने दिन सोचा करता कि जैसे सभी जगह शिव होते हैं, वैसे ही ये भी हैं । परन्तु यह क्या ! बिल्कुल सजीव दर्शन कर रहा हूँ ! ठाकुर ने मेरे प्राणों में जो आनन्द ढाल दिया, उसे भला वाणी से कैसे व्यक्त करूँ ! वह अनुभूति का विषय है !

इसके बाद ठाकुर ने माँ का वस्त्र थोड़ा-सा खींचा, उनके पाजेब थोड़े खिसका दिये और बाजूबन्द को थोड़ा-सा हिला दिया । लौटते समय उनकी धोती खिसककर गिर चुकी थी और वे पूरे दिगम्बर थे । वे ऐसे उन्मत्त दीख रहे थे, मानो पाँच-सात बोतल मदिरा पी हो । बड़े कष्टपूर्वक उन्हें कमरे में लाया, तो वहाँ काफी देर तक समाधि में डूबे रहे ।

उस दिन की बातें और क्या कहूँ ! मुझे ठाकुर ने जो कुछ दिखाया था, उसी के बारे में सोचते-सोचते किस प्रकार सारा दिन बीत गया, यह मेरी समझ में ही नहीं आया । ठाकुर ने भावस्थ होकर बहुत-से भजन गाये ।

मारवाड़ी भक्तों के संग

एक अन्य दिन मैंने जाकर देखा कि ठाकुर का कमरा बड़ाबाजार के मारवाड़ियों से भरा हुआ है । उनमें से कइयों के हाथ में तुलसी की माला थी । वे लोग ठाकुर की ओर टकटकी लगाये हुए ध्यान कर रहे थे । मैंने देखा उन लोगों ने ठाकुर के सामने

काफी मात्रा में तरह-तरह के उत्कृष्ट मेवे (अनार, अंगूर, पिस्ता, बादाम, किसमिस, खुबानी आदि) सजाकर रख दिये थे । उन लोगों की भक्ति की प्रशंसा करनी होगी ।

जो लोग जप कर रहे थे, उनकी अन्य किसी भी ओर दृष्टि नहीं थी । उनके पास जब भी इस प्रकार के हिन्दी-भाषी या राजपुताना के भक्त आते, तो ठाकुर उन्हें यह भजन सुनाया करते –

हरि से लागि रहो रे भाई,
तेरी बनत-बनत बनि जाई ।
अंका तारे बंका तारे, तारे सुजन कसाई,
सुगा पढ़ायके गणिका तारे, तारे मीराबाई ।।

वे हँसते हुए यह भजन भी गाया करते –

दिल राम को नहीं जाना है
तो जो जाना है सो क्या रे ।
दिल राम को नहीं किया
तो जो किया सो क्या रे ।।

इस भजन के बाद वे हँसते हुए आनन्दपूर्वक दाशरथी राय का यह भजन गाते –

मेरे पास क्या फलों का अभाव है
तुम लोग मेरे पास फल लेकर निरर्थक ही आये ।
मुझे जो फल मिला है, उससे मेरा जन्म सफल हो गया है,
मोक्ष-रूपी फल के वृक्ष श्रीराम मेरे हृदय में विराजित हैं ।
मैं श्रीराम-रूपी कल्पतरु के नीचे निवास करता हूँ,
जिस भी फल की इच्छा करता हूँ, वह प्राप्त हो जाता है,
मैं फल की बात कहता हूँ, मैं इन फलों का ग्राहक नहीं हूँ,
तुम लोगों को प्रतिफल देकर जाऊँगा ।।

वे लोग एकाग्र दृष्टि से ठाकुर की ओर देखते हुए जप किये जा रहे हैं, इसे देखकर वे कहते, "श्रीराम, लक्ष्मण

तथा सीता जब वन में निवास कर रहे थे, तो एक पक्षी पानी पी रहा था और 'राम राम राम', 'राम राम राम' जप भी कर रहा था । उसे देखकर राम ने लक्ष्मण से कहा, ''लक्ष्मण, देखो देखो, वह पानी पी रहा है और चोंच से 'राम-राम' भी बोल रहा है ।'' 'राम' भगवान का नाम है ।

वही राम दशरथ का बेटा,
वही राम घट घट में लेटा ।
वही राम ने जगत् बनाया,
वही राम है सबसे न्यारा ।।''

राजपुताना के भक्तों के साथ ठाकुर ने खूब आनन्द किया; और जिन्हें मैंने देखा, वे भी भक्त-चूड़ामणि थे ।

एक अन्य दिन जाकर देखा कि राजपुताना के बहुत-से (मारवाड़ी) भक्त पंचवटी के नीचे वनभोज का आयोजन कर रहे हैं । बाटी, चुरमा और दाल – ये ही उनके वनभोज के खाद्यपदार्थ थे ।

पहले बड़े-बड़े गोबर के कण्डों की आग पर रखकर आटे की गोलियों को पकाते हैं । इसके बाद जब उसके ऊपर का भाग फटने लगता है, तो ऊपर के कड़े भाग से बाटी बनती है । उसे दाल के साथ खाया जाता है । उसके भीतर के नरम भाग के साथ काफी मात्रा में घी, चीनी, पिस्ते, बादाम, किसमिस तथा इलायची आदि मिलाने के बाद उन्हें अच्छी तरह मसलकर बड़े-बड़े लड्डू बनाये जाते हैं । उसी को चूरमा कहते हैं । वह बड़ा ही स्वादिष्ट होता है और उन लोगों का प्रिय खाद्य है । एक परात में इसी प्रकार के लड्डू सजाकर वे लोग ठाकुर के पास ले गये । उसे पाकर वे खूब आनन्द व्यक्त करने लगे ।

उन लोगों के चले जाने के बाद ठाकुर तत्काल कहते, ''नरेन को बुलवाकर यह सब खिलाना होगा । यह चीज एक नरेन को छोड़ दूसरा कोई भी हजम नहीं कर सकेगा । यह सब यदि नरेन न खाय, तो कौन हजम करेगा? नरेन मानो ज्वलन्त अग्नि है ! उसमें केले का पेड़ भी डाल दो, तो वह जलकर भस्म हो जाता है ।''

बड़ाबाजार के मारवाड़ियों के विभिन्न स्वादिष्ट खाद्यपदार्थ एकमात्र स्वामीजी ही सबसे अधिक खाया करते थे ।

आनन्दमय साधु, ब्रह्म और शक्ति

एक दिन मैंने एक खूब आनन्दमय साधु को देखा था । वे सर्वदा हिन्दी में बहुत से ज्ञानपूर्ण दोहे बोलते रहते थे । स्वामी तुरीयानन्द तथा मैं कुछ दिनों तक उनका संग करके खूब आनन्द पाया करते थे । उनके हिन्दी पदों में से एक की कई पंक्तियाँ मुझे अब भी याद हैं ।

वे ही साधु दक्षिण में भ्रमण करते हुए भगवद्दर्शन के लिये बड़े व्याकुल हुए । सेतुबन्ध रामेश्वर के मन्दिर में प्रविष्ट होकर वे बाबा के अनादि स्वयम्भू लिंग को दोनों हाथों से पकड़कर बोले, ''मैं ब्रह्मज्ञान पाये बिना तुम्हें नहीं छोड़ूँगा ।'' उनके ऐसा कहते ही मन्दिर के पण्डों में शोरगुल मच गया । क्योंकि कोई भी मन्दिर में जाकर बाबा को स्पर्श नहीं कर सकता था । पुजारी पण्डों ने उन्हें धक्के मारकर मन्दिर से बाहर निकाल दिया । उसी समय से बाबा के पास से आनन्द पाकर वे साधु आनन्दमय पुरुष होकर भ्रमण करते रहते थे ।

मैंने दक्षिणेश्वर जाकर ठाकुर को उन्हीं साधु के विषय में बताते हुए उनके एक पद की दो-एक पंक्तियाँ भी सुनाई थीं –

सुन नरलोई, छोटा बड़ा है न कोई ।
आज जोई ब्रह्म पीलमें, पिपील में भी सोई ।।

ठाकुर हँसते-हँसते बोले, ''इसका क्या अर्थ है?'' मैं बोला, ''हे नरलोक के लोगो, सुनो, तुम लोगों में कोई छोटा या बड़ा नहीं है । हाथी में जो ब्रह्म है, वही ब्रह्म चींटी में भी है । एक ही ब्रह्म हाथी तथा चींटी में समान रूप से विद्यमान है; अत: कोई छोटा या बड़ा नहीं है ।'' सुनकर ठाकुर ने हँसते हुए कहा, ''हाथी की शक्ति चींटी . के समान तो नहीं है । ब्रह्म एक है, परन्तु शक्ति में क्या छोटा-बड़ा नहीं है?''

जिस समय मेरी ठाकुर के साथ ये बातें हो रही थीं, उस समय मैं अकेला था, दूसरा कोई भी नहीं था । इसके बाद देखते-ही-देखते कितने ही भक्त आ गये और पूरा कमरा भर गया ।

ऐसे समय मैं प्राय: पंचवटी में या बिल्व वृक्ष के नीचे जाकर बैठ जाता । हमेशा ही ठाकुर के कमरे में ज्यादा भीड़ होने पर मैं अधिक देर तक वहाँ चुपचाप नहीं बैठ पाता था ।

एक अन्य दिन वहाँ गया था । सुबह जाकर देखा कि ठाकुर अपने कमरे के पूर्व की ओर के बरामदे में उत्तर की ओर की दीवार के पास मुण्डन करवा रहे हैं । मुझसे बोले, ''आज यहीं रह जा ।'' मैं रह गया ।

दक्षिणेश्वर में अभेदानन्द के साथ मेरी खूब बातें होती । वे स्कूल से भाग आते थे । वे खूब बलवान तथा कामकाज में बड़े दक्ष थे । ठाकुर उनसे बड़ा स्नेह करते थे ।

एक अन्य दिन मैंने जाकर देखा ठाकुर के हाथ पर खपच्ची बँधी हुई है और उसे गले में पट्टी बाँधकर लटका दिया गया है । सुना कि भाव की अवस्था में गिर जाने से उनका हाथ टूट गया था ।

यह बड़ी पुरानी बात है । मैं उस समय काफी छोटा था ।

ठाकुर जिस दिन अधर सेन के घर आये, उस दिन मैं वहीं था । बंकिम बाबू भी उस दिन वहाँ उपस्थित थे ।

बलराम-भवन में

अब मैंने बलराम बाबू के मकान में कई बार ठाकुर को जैसा देखा था और जो कुछ मुझे याद है, उसी को लिखता हूँ ।

एक दिन बलराम बाबू के घर में बड़ी भीड़ थी । सभी तरह के लोग आये हुए थे । भक्त तथा अभक्त – दोनों तरह के लोग थे और उनमें शशधर तर्कचूड़ामणि भी थे । पूरा हाल लोगों से भरा हुआ था । तर्कचूड़ामणि का हृष्ट-पुष्ट शरीर था । उन्होंने सफेद धोती तथा सफेद चादर धारण कर रखा था, गले में एक माला और दृष्टि नीचे की ओर थी । उनके साथ पटलडांगा के उनके शिष्य भूधर चैटर्जी भी थे ।

ठाकुर शशधर तर्कचूड़ामणि से बोले, ''अजी, यहाँ तो बहुत-से लोग हैं । तुम कुछ बोलो न ।'' तर्कचूड़ामणि ने कहा, ''मैं तो नास्तिकों से कुछ कहता हूँ, परन्तु यहाँ तो सब आस्तिक हैं । यहाँ पर मैं क्या कहूँगा? आप ही बोलिये ।'' ठाकुर बोले, ''देखो, मुझे पहले पता चला था कि तुम एक बड़े विद्वान हो, परन्तु अब देख रहा हूँ कि तुम एक साधक हो ।'' यह सुनकर शशधर तर्कचूड़ामणि के नेत्रों से धाराप्रवाह अश्रु बहने लगे ।

उस दिन ठाकुर ने भावमुख में स्थित होकर खूब नृत्य, कीर्तन आदि किया था ।

एक अन्य दिन की बात है । ठाकुर सुबह के समय बलराम बाबू के मकान में आये थे । उनके चारों ओर बहुत-से भक्त बैठे हुए थे । उसी समय स्वामीजी एक कमीज पहने आये और ठाकुर के खूब निकट बैठ गये । ठाकुर ने उनसे, ''क्यों रे, (दक्षिणेश्वर) गया क्यों नहीं?'' आदि कई प्रश्न पूछे । स्वामीजी गुनगुनाते हुए गाने लगे, ''(भावार्थ) ले रे मन राम नाम, नित्य नित्य ले रे'' आदि । सुनकर ठाकुर मुग्ध और बाकी सभी लोग स्तब्ध हो गये ।

इसके बाद धीरे-धीरे भक्त-अभक्त सभी प्रकार के लोगों के आ जाने से कमरा भर गया । थोड़ी देर इसी प्रकार बातें करने के बाद ठाकुर सहसा भावसमाधि में खड़े हो गये और दिगम्बर अवस्था में ही नृत्य-गीत आरम्भ कर दिया ।

उसे सुनकर अनेक भक्तों को भाव हो गया । कोई रोने लगा, कोई हँसने लगा, कोई ध्यानस्थ हो गया, तो किसी को पुलक होने लगा । अद्‌भुत दृश्य था !

जो लोग केवल तमाशा देखने आये थे, वे नीचे उतरते समय कहने लगे, ''वाह, ये परमहंस माँ का कैसा अद्‌भुत नाम-गुणगान करते हैं ! सीने के भीतर कड़-कड़ काटते हुए बिल्कुल हृदय में प्रविष्ट हो जाता है ।''

एक अन्य समय रथयात्रा के दिन ठाकुर बलराम बाबू के घर में आये हुए थे । उस समय आनन्द की कैसी बाढ़ आ गयी थी ! संकीर्तन और उद्दाम नृत्य हुआ था ।

ठाकुर बालकों से कहते, ''अरे, नाच-गान कर, तभी तो बलराम मालपुए खिलायेगा ।'' यह बात सुनते ही लड़के खूब जोरों से नाम और कीर्तन करने लगे ।

एक अन्य दिन सुबह ठाकुर बलराम बाबू के घर आये हुए थे । ऊपर चढ़ते ही दाहिने हाथ से पश्चिम की ओर जो छोटा कमरा है, वे उसी में बैठे थे । कुछ अन्य लोग भी थे । प्रणाम करके मैं भी उनकी बगल में ही बैठ गया ।

उस दिन ठाकुर की अवस्था पूर्णत: अन्तर्मुखी थी । वे दो-चार बातें कहते और फिर भाव में डूब जाते । उसी अवस्था में उन्होंने 'रामलला' का प्रसंग उठाया । वे रामलला को कैसे स्नान कराते, फिर वह कैसे शैतानी किया करता था, आदि बताते हुए उसका लीला-वृत्तान्त सुनाने लगे । एक दिन लाई खाते समय रामलला के मुख में एक धान गड़ गया था । ''जिस मुख में माता कौशल्या खीर, मक्खन, मलाई आदि देते हुए भी संकोच का अनुभव करती थीं, आज उसी मुख में मैंने धान दे दिया !'' यह कहकर वे रोने लगे और भावसमाधि में डूब गये । चेतना लौटने पर फिर रामलला की ही बातें करने लगे । कितने ही शब्द जोर देकर अपने उस प्राण-भुलाने वाले तथा मनमोहक कण्ठ से रामलला का गुणगान करने लगे ।

इसी प्रकार रामलला के भाव में ही काफी समय बीत गया । इसके बाद भावसमाधि में थोड़ी देर मौन रहने के बाद ही वे जगदम्बा के साथ बातें करने लगे ।

''माँ, क्या मैं तुम्हें मन-प्राण समर्पित कर दूँ?
तुम्हीं तो मनोमयी हो और तुम्हीं प्राणमयी हो ।''

शेष भाग पृष्ठ २७२ पर

उनके अद्भुत भाषण ने सबको मंत्रमुग्ध कर दिया

लक्ष्मीनारायण इन्दुरिया, भोपाल

घटना १९६०-६१ के अक्टूबर-नवम्बर की है। उस समय मेरी आयु १६ वर्ष होगी। मैं शासकीय विज्ञान महाविद्यालय, रायपुर में प्री-युनिवर्सिटी का छात्र था। माननीय डॉ. करमसिंह जी हमारे कॉलेज के प्राचार्य थे। माननीय डॉ. सुरेन्द्रदेव मिश्रा गणित विभाग के विभागाध्यक्ष थे। वे बड़े सख्त एवं अनुशासनप्रिय व्यक्ति थे। कॉलेज के छात्र उनसे डरते थे और वे कई अनुशासनहीन छात्रों की पिटाई भी कर चुके थे।

एक दिन साढ़े दस-ग्यारह बजे, हम लोगों को महाविद्यालय के सूचना-पटल पर लगी सूचना के द्वारा पता चला कि आज संध्या ४ बजे श्रद्धेय स्वामी आत्मानन्द जी महाराज के द्वारा 'मेथेमेटिकल सोसायटी' का उद्‌घाटन किया जाएगा। 'मेथेमेटिकल सोसायटी' का उद्‌घाटन एक संन्यासी के द्वारा – यह बात मुझे कुछ जँची नहीं। मुझे लगा कि साधु-संतों को गणित के बारे में क्या पता। इस समय तक मैं श्रीरामकृष्ण देव, श्रीमाँ सारदा देवी, स्वामी विवेकानन्द तथा रामकृष्ण मिशन आदि के बारे में कुछ भी नहीं जानता था। इस बात की भी कल्पना नहीं थी कि श्रद्धेय स्वामी आत्मानन्द जी महाराज ने १९५१ में नागपुर विश्वविद्यालय से प्योर मैथमैटिक्स में एम.एस.सी की उपाधि प्राप्त की थी और सर्वाधिक गुणांक प्राप्त करने के कारण वे स्वर्ण-पदक के अधिकारी भी हुए थे।

जो भी हो, संन्यासी के द्वारा 'मेथेमेटिकल सोसायटी' के उद्‌घाटन करवाने के निर्णय के विरुद्ध हमने विरोध करना चाहा। मैंने अपने कुछ मित्रों से चर्चा कर यह योजना बनाई कि स्वामी आत्मानन्द जी के भाषण के दौरान हम लोग हो-हल्ला करेंगे। किसी ने कहा कि प्रोफेसर मिश्राजी को पता लगा तो अपनी जमकर पिटाई होगी। अत: हम लोगों ने कॉलेज की आडिटोरियम गेलेरी में बैठकर हुल्लड़ मचाने की योजना बनाई।

संध्या ४ बजे कार्यक्रम प्रारंभ होने के पहले ही हम लोग विज्ञान महाविद्यालय के सभागृह की प्रथम मंजिल में सामने की पंक्ति की कुर्सियों में बैठ गए। कुछ समय पश्चात् स्वामी आत्मानन्द जी महाराज मंच पर उपस्थित हुए। संक्षिप्त प्रारम्भिक परिचय आदि के पश्चात् 'मेथेमेटिकल सोसायटी' का औपचारिक उद्‌घाटन किया गया। इसके पश्चात स्वामी आत्मानन्द जी ने 'वैदिक गणित' विषय पर अपना भाषण अंग्रेजी में प्रारम्भ किया। संस्कृत के सूत्रों को ब्लैक बोर्ड पर लिखकर उन्होंने केल्कुलस के प्रश्नों का सरलतापूर्वक हल करते हुए प्राचीन भारत में गणित के विकास पर भाषण दिया। अंग्रेजी तथा संस्कृत भाषा पर उनका असाधारण अधिकार था। उनकी वाणी और भाषणशैली में अद्‌भुत आकर्षण था, जो श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर देती थी। स्वामी आत्मानन्द जी का भाषण समाप्त होने के पश्चात् हम लोगों को होश आया कि कहाँ तो हम लोग हो-हल्ला मचाने के लिए आए थे, किन्तु उनके अद्भुत व्यक्तित्व के प्रभाव में अपनी सुधबुध गँवा बैठे। हमें उनके प्रति अपनी अनुचित धारणा पर भी पश्चात्ताप हुआ।

अपने मित्रो की तुलना में, मैं स्वामी आत्मानन्दजी के प्रति सर्वाधिक प्रभावित हुआ। उस समय रायपुर नगरपालिका सीमा से बाहर जी. ई. रोड (भिलाई रोड) के किनारे एक छोटे भवन में 'विवेकानन्द आश्रम' का संचालन, स्वामी आत्मानन्दजी के द्वारा किया जाता था। 'विवेकानन्द आश्रम' हमारे साईन्स कालेज के रास्ते पर पड़ता था। आश्रम की भूमि पर बाउन्ड्री-वाल नहीं थीं। वर्तमान में जहाँ आश्रम स्थित है, वहाँ सूअर आदि जानवर घूमते रहते थे और देवार लोगों (एक घुमंतु जाति) का डेरा भी लगा रहता था। मैंने स्वामी आत्मानन्द के पास आना-जाना प्रारंभ किया। वे प्राय: व्यस्त रहते थे। मैं प्राय: उनके प्रमुख सहयोगियों से मिलता था, जो परवर्तीकाल में संन्यास-ग्रहण के पश्चात् स्वामी सत्यरूपानन्द और स्वामी निखिलात्मानन्द जी हुए। स्वामी सत्यरूपानन्द जी से मेरी निकटता बढ़ती गई और मैंने श्रीरामकृष्ण देव, श्रीमाँ सारदादेवी तथा स्वामी विवेकानन्द जी के साहित्य को पढ़ना आरम्भ किया। वर्ष १९६३ में परम पूज्य स्वामी यतीश्वरानन्दजी महाराज से मेरी मंत्रदीक्षा नागपुर आश्रम में हुई जो मेरे जीवन का सर्वाधिक सौभाग्यशली क्षण था। इस प्रकार स्वामी आत्मानन्द जी महाराज के अद्भुत व्यक्तित्व के आकर्षणस्वरूप मुझे 'रामकृष्ण भावधारा' में अवगाहन करने का अवसर प्राप्त हुआ। ○○○

आध्यात्मिक जिज्ञासा (३०)

स्वामी भूतेशानन्द

प्रश्न - महाराज, जैसे-जैसे दिन बीतते जा रहे हैं, देखा जा रहा है कि सर्व-साधारण का त्याग-वैराग्य कम हो रहा है।

महाराज – यह बात मत कहो। सार्वजनिक रूप से त्याग-वैराग्य का परिमाण नहीं होता। कहो कि किसी-किसी का कम हो रहा है। जैसे किसी-किसी का कम हो रहा है, वैसे ही किसी-किसी का बढ़ भी रहा है। हमलोगों में जैसे अधिक त्याग-वैराग्यवान साधु हैं, वैसे ही कम वैराग्यवान साधु भी हैं। सार्वजनिक रूप से त्याग वैराग्य के कम-अधिक की ऐसी कोई बात नहीं होती है। एक बार शाश्वतानन्द जी महाराज ने महापुरुष महाराज से ऐसा प्रश्न पूछा था – "महाराज, हम सभी लोग आदर्श की ओर आगे बढ़ रहे हैं, ऐसा सदा बोध नहीं होता है।"

महापुरुष महाराज ने कहा – "सबकी बात मत कहो। दूसरे को क्या हो रहा है, क्या नहीं हो रहा है, हम लोग समझ नहीं सकते। अपना क्या हो रहा है, समझ सकते हैं। हम स्वयं आगे जा रहे हैं या पीछे, इसे स्वयं ही जान सकते हैं।" यह बड़ी मूल्यवान बात है। महापुरुष महाराज ने और कहा – "हमलोगों का आदर्श और उद्देश्य इतना ऊँचा है कि हम उसे तुरन्त नहीं समझ सकेंगे कि हम उद्देश्य की ओर कितना अग्रसर हुए हैं। हम लक्ष्य की ओर अग्रसर हो रहे हैं कि नहीं उसे जानने के लिये, जिस अवस्था से, जहाँ से हम आगे बढ़े थे, उस अवस्था में वापस जाकर विचार करना होगा।" यह बात मूल्यवान है, सचमुच मन में रखने योग्य है।

प्रश्न – महाराज, बहुत-सी समस्याओं के समाधान में आप विचार करने की बात कहते हैं। किन्तु विचार तो स्थायी नहीं है, सदा टिकता नहीं है। जिसे करने को सोचता हूँ, उसे कई बार कर नहीं पाता हूँ। जिसे नहीं करने को सोचता हूँ, उसे कर देता हूँ। तब क्या किया जाए?

महाराज - यदि कर ही देते हो, तो बहुत सोचना होगा, विचार करना होगा। 'अब कुछ नहीं करूँगा' इसे हृदय से कहना होगा।

– सोच-विचार करता हूँ, लेकिन पुनः कर देता हूँ।

महाराज – इसका अर्थ है कि वह स्वभाव हो गया है। माँ जब लड़के को डाँटती या मारती है, तब लड़का कहता है, माँ अब यह गलती पुनः नहीं करूँगा। किन्तु छोड़ते ही पुनः वह गलती करता है। ऐसा ही है न? (सभी हँसते हैं)

प्रश्न – महाराज, ठाकुर ने इस युग में मातृ-भाव के विकास के लिए श्रीमाँ को रख दिया था। मातृभाव की क्या विशेषता है?

महाराज – मातृभाव की आकांक्षा सार्वभौमिक है। संसार में हम सभी लोग माँ को चाहते हैं। माँ के बिना हमारा काम नहीं चलता।

– उसकी तो सभी युगों में आवश्यकता है। इस युग की क्या विशेषता है?

महाराज – इस युग में हम सभी नाबालिग हैं। (सभी हँसते हैं)

– माँ ने कहा है, जानते हो बेटा, ठाकुर का संसार में सब पर मातृभाव था। क्या ठाकुर सबको सन्तान भाव से देखते थे?

महाराज – हाँ, कई लोग ठाकुर को माँ के रूप में देखते थे। जैसे राजा महाराज थे। जब उनकी आयु २०-२२ वर्ष की थी, तब वे ठाकुर की गोद में बैठते थे। स्तन पीते थे, जानते हो तो। महापुरुष महाराज भी ठाकुर को माँ के रूप में देखते थे। ठाकुर के पास आकर ठाकुर के चरणों में सिर न रखकर उनकी गोद में सिर रखते थे। माँ की गोद है न।

– महाराज इसके अतिरिक्त अन्य कौन-कौन से लोग ठाकुर को माँ के रूप में देखते थे?

महाराज – क्या सब कुछ हम लोग जानते हैं? क्या सब कुछ जाना जा सकता है?

प्रश्न – महाराज! पूर्णचन्द्र घोष ने ठाकुर को पत्र लिखा

था – 'आनन्दातिरेक में रात में नींद नहीं आई।' यह बात सुनकर ठाकुर कहते हैं – "अहा! अहा! पत्र दिखाओ तो! पत्र को हाथ में लेकर मोड़ रहे हैं और कह रहे हैं, दूसरों के पत्र का स्पर्श नहीं कर पाता हूँ, यह पत्र बहुत अच्छा है। ठाकुर समाचार-पत्र को स्पर्श नहीं कर पाते थे, यह तो समझ रहा हूँ, किन्तु पत्र को स्पर्श नहीं कर पाते थे, क्यों?

महाराज – पत्र में कितनी कामना-वासनाएँ लिखी रहती हैं। आप आशीर्वाद दीजिए, जिससे हमारे पुत्र की नौकरी लग जाये, पुत्री का विवाह अच्छे से हो जाए, ऐसी कितनी बातें लिखी रहती हैं।

प्रश्न – महाराज! पूर्व जन्म या आगामी जन्म के साथ आध्यात्मिक जीवन का क्या सम्बन्ध है?

महाराज – किसका पूर्वजन्म या आगामी जन्म? जो वर्तमान जन्म में है उसका। अर्थात् जो है, उसका पूर्वजन्म और आगामी जन्म। वर्तमान जन्म के साथ पूर्वजन्म या अगामी जन्म का सम्बन्ध है। कहा जाता है कि अनेक संचित कर्मों में से मानो कुछ को खींचकर निकाला जाता है, उसके द्वारा यह जन्म निर्धारित हुआ है। इसके बाद इस जन्म में मृत्यु के पहले जो चिन्तन करेंगे, उसके अनुसार आगामी जन्म निर्धारित होगा। मृत्यु के समय मानव की चिन्तन-शक्ति नष्ट हो जाती है। तब सारा जीवन हम लोगों ने जैसा अभ्यास किया है, वैसा ही, मन उसी प्रकार के चिन्तन में मन प्रवृत्त होता है। मृत्यु के समय भगवान का चिन्तन हो, इसलिए गीता में भगवान कहते हैं –

तस्मात् सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युद्ध्य च।

– हमेशा मेरा चिन्तन करते हुये युद्ध करो। सर्वदा उनका चिन्तन करते-करते दृढ़ अभ्यास होने पर मृत्यु काल में उनका स्मरण सम्भव है। मैंने कर्मों को खींचकर बाहर निकालने की बात जो कही थी, क्या वह इच्छानुसार है? नहीं, वह भी हमारे पूर्व कर्मों के अनुसार है। अच्छा कर्म करने से अच्छा, बुरा कर्म करने से बुरा, ऐसा फल होता है और उसी के अनुसार अगामी जन्म होता है।

– महाराज! तब क्या जो अच्छा है, वह अच्छा होगा, जो बुरा है, वह बुरा होगा? तब बुरे व्यक्ति का अच्छी दिशा में परिवर्तन का सुअवसर कहाँ है?

महाराज – बुरा माने क्या बिल्कुल बुरा?

– नहीं, दोनों ही रहता है। कम-अधिक दोनों ही रहता है।

महाराज – हाँ।

(क्रमशः)

काव्य सरिता

श्रीरामकृष्ण की जय हो

वेणीमाधव हरिहारनो, राजनांदगाँव

त्रेता में श्रीराम हुए और द्वापर में श्रीकृष्ण हुए।
दुखियों के सब पाप नाशने कलि में रामकृष्ण हुए।
धर्मसमन्वयक की जय हो ! श्रीरामकृष्ण की जय हो!
तुम ही काली तुम ही शंकर, तुम ही प्रभु कृष्ण बने,
राम तुम्हीं, ईसामसीह तुम, तुम ही सब देव बने,
सर्वदेवदेवीस्वरूप की जय हो, श्रीरामकृष्ण की जय हो!
हे अग-जगव्यापी रामकृष्ण ! सब जग तेरी सन्तान,
शिवभाव से जीवसेवा का दिया आपने ज्ञान,
हे जगदुद्धारक जय हो, श्रीरामकृष्ण की जय हो !

सोना तो केवल सोना है

भानुदत्त त्रिपाठी, 'मधुरेश'

सुख-शान्ति नहीं है सोना में, सोना तो केवल सोना है।
हरि के चरणों से प्रेम करो, जग में यदि सुख से सोना है।।
सोना नयनों का आकर्षण, आकर्षण लोभ जगाता है,
सोना ही पाने को मानव निसिवासर जुगत लगाता है,
सोना के वशीभूत होकर अन्तिम फल केवल रोना है।
सुख-शान्ति नहीं है सोना में, सोना तो केवल...।।
खल हिरण्याक्ष की आँखों मे केवल सोना ही बसता था,
सोना ही हिरण्यकश्यप को अपने जकड़न में कसता था,
सोना की शय्या पर सदैव सुख-शान्ति सभी कुछ खोना है।
सुख-शान्ति नहीं है सोना में, सोना तो केवल...।।
सोना की लंका पा करके रावण को अति अभिमान हुआ,
जीवन भर वह बेचैन रहा औ वंशसहित अवसान हुआ,
सोने का लोभ बढ़ा करके केवल काँटे ही बोना है।
सुख-शान्ति नहीं है सोना में, सोना तो केवल...।।
होता है सोने का न हिरन, फिर भी सीता को लोभ हुआ,
उस स्वर्णिम मृग के लालच से आजीवन उनको क्षोभ हुआ,
सोने का लालच तो सदैव दुख-चिन्ता को ही ढोना है।
सुख-शान्ति नहीं है सोना में, सोना तो केवल...।।

भारत कोकिला सरोजिनी नायडू

सरोजिनी नायडू का जन्म १३ फरवरी, १८७९ में हैदराबाद में हुआ था। उनके पिता का नाम अघोरनाथ चट्टोपाध्याय था और वे विज्ञान के बहुत बड़े पण्डित थे। अपने पिता के बारे में उन्होंने स्वयं ही लिखा था, ''मुझे लगता है कि समस्त भारत में ऐसे कम ही व्यक्ति हैं, जो विद्वत्ता में उनसे अधिक हों और मैं नहीं समझती कि उनसे अधिक कोई स्नेही व्यक्ति होगा।'' उन्हें अपने पिता से बहुत-से गुण विरासत में मिले थे।

उनके पिता ने हैदराबाद में निजाम कॉलेज की स्थापना की थी। उन्हें अंग्रजी भाषा बहुत अच्छी लगती थी और बचपन से ही सरोजिनी को अंग्रेजी सिखाते थे। आज से लगभग १४० वर्ष पहले लड़कियों को तो बिल्कुल भी शिक्षा नहीं दी जाती थी। किन्तु उस समय भी सरोजिनी के पिता उन्हें उच्च शिक्षा की ओर प्रेरित करते थे। यहाँ तक कि सरोजिनी अंग्रेजी भाषा में इतनी दक्ष हो गई थीं कि वे अपनी कविताएँ भी अंग्रेजी भाषा में लिखती थीं। अंग्रेजी भाषा उनके लिए मातृभाषा के समान हो गई थी।

सरोजिनी नायडू बचपन से ही बड़ी विदुषी थीं। उनके जीवन में कविता की प्रेरणा कैसे आई, इसकी एक रोचक घटना है। उस समय उनकी उम्र लगभग ११ वर्ष की थी। वे बीजगणित का एक प्रश्न हल कर रही थीं। वह उनसे नहीं हो पा रहा था। अचानक उनके मन में कविता फूट पड़ी। उन्होंने एक लम्बी कविता लिख डाली। बस, यहीं से उनके काव्य-जीवन की शुरुआत हुई। तेरह वर्ष की अवस्था में उन्होंने ६०० पद्यों की 'लेडी आफ दी लेक' कविता छह दिनों में लिख डाली थी। उन्हें पुस्तकें पढ़ने का बहुत उत्साह था और वे दिन-रात पुस्तकें पढ़ा करती थीं।

सोलह वर्ष की आयु में सरोजिनी १८९५ में इंग्लैण्ड पढ़ने गईं। उनके पिता की इच्छा थी कि वे विदेश में उच्च शिक्षा के लिए पढ़ने जाएँ। वहाँ बी. ए. पास करने के बाद वे कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में पढ़ने गईं और उसके बाद भारत लौट आईं।

भारत में आने के बाद वे भारत के स्वतन्त्रता आन्दोलन की गतिविधियों में भाग लेने लगीं। उनका नाम पहले ही बहुत प्रसिद्ध हो चुका था। सरोजिनी नायडू का भाषण बड़ा ही अद्भुत रहता था। उनमें विलक्षण वक्तृत्व कला थी। उनका भाषण सुनने के लिए छात्र, नेता इत्यादि लोग आतुर रहते थे। छात्र अपने कार्यक्रमों में उन्हें अध्यक्षता करने के लिए निमन्त्रण देते थे। उन्होंने मद्रास पचयप्पा कॉलेज में छात्रों को सम्बोधन करते हुए कहा था, ''आप लोगों से बड़ी आशाएँ की जाती हैं। आप लोगों पर महान कर्तव्यों का भार है और उन कार्यों को पूरा करने की जिम्मेदारी आप पर है। आप कहाँ हैं और कौन हैं, इसकी चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है। सड़क साफ करने वाला एक भंगी भी देशभक्त हो सकता है। उसके भीतर प्रेरित करनेवाली आत्मा को आप देख सकते हैं, जो आपको भी प्रोत्साहित कर सकती है। आपलोगों में से कोई भी तुच्छ अथवा उपेक्षित नहीं है।''

उस समय विद्या तथा अन्य क्षेत्रों में महिलाओं को बहुत कम अधिकार प्राप्त थे। नारियों को भी पुरुषों के समान मताधिकार प्राप्त हो, इसलिए सरोजिनी नायडू ने आन्दोलन चलाया था और उसमें उन्हें सफलता भी प्राप्त हुई थी।

सरोजिनी नायडू महात्मा गाँधी को अपना गुरु मानती थीं। गाँधीजी का भी उन पर अटूट विश्वास था। साहित्य के क्षेत्र में सरोजिनी नायडु एक बहुत बड़ी कवयित्री थीं। भारत और विदेश के बड़े कवि भी उनकी कविताओं की प्रशंसा करते थे। वे चाहतीं तो सुख-वैभव में अपना जीवन बिता सकती थीं। किन्तु देश के लोगों के लिए उन्होंने अपने वैभवपूर्ण जीवन का बलिदान किया। वे भारत की ऐसी प्रथम महिला थीं, जिन्हें काँग्रेस के सभापति के पद पर सुशोभित किया गया था। भारत की स्वतन्त्रता के बाद वे उत्तर प्रदेश की प्रथम राज्यपाल बनी थीं। २ मार्च, १९४९ को उनका देहान्त हुआ। भारत सरकार ने उनके जन्मदिन १३ फरवरी, १९६४ पर उन्हें श्रद्धांजलि देते हुए डाक टिकट जारी किया था। OOO

क्या करें, टाईम ही नहीं मिलता !

स्वामी मेधजानन्द

जब हम सुबह नींद से उठते हैं, तब हमारा बटुआ जादुई ढंग से भर जाता है। चौबीस घण्टे की अमूल्य राशि अपने आप हमारे बटुए में आ जाती है। इस राशि को प्राप्त करने के लिए हमें कुछ प्रयास नहीं करना पड़ता, किन्तु हाँ, इस राशि को अच्छी तरह से खर्च करने के लिए कुछ परिश्रम अवश्य करना पड़ता है। कुछ लोगों के पास प्रत्येक वस्तु के लिए समय रहता है, जैसे कि खेलना, घूमना, पढ़ना, नींद लेना, गप्पें मारना इत्यादि।

समय अपनी गति से अवश्य भाग रहा है, किन्तु हमें समय के पीछे भागना नहीं है। अपनी दिनचर्या का ठीक पालन करना ही समय का सदुपयोग करना है। समय के पीछे भागना समय का दुरुपयोग करना है। सप्ताह में यदि एक दिन छुट्टी मिलती है, तो उस छुट्टी का आनन्द उठाना भी आना चाहिए। उस दिन मन को थोड़ा आराम देना चाहिए। एक लम्बी छलांग मारने के लिए कुछ कदम पीछे जाना पड़ता है और यह पीछे जाना आगे बढ़ने की प्रक्रिया का ही एक अंग है।

कुछ लोग काम करने में इतने धीमे होते हैं कि उनके हाथ से समय फिसल जाता है। इसके अलावा कुछ लोग प्रत्येक कार्य जल्दबाजी में करते हैं, वे भी अपना समय गँवा देते हैं। यह बात ठीक है कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी-अपनी क्षमता के अनुसार कार्य करता है, किन्तु हमारे कार्य करने की शैली में नवीनता और उत्साह होना चाहिए। कार्य और समय – दोनों की गति में ठीक तालमेल होना चाहिए।

एक व्यक्ति कम्पनी में नौकरी करता था। उसे अपने काम से फुरसत ही नहीं मिलती थी। वैसे उसे काम कुछ अधिक नहीं था, किन्तु उसका काम करने का तरीका पुराने ढर्रे का था। वह उसे बदलना नहीं चाहता था। उसके कार्य की गति अत्यन्त धीमी थी। कार्य को सुचारु रूप से सम्पन्न करने के लिए जो आधुनिक तकनीकें थीं, उसे वह उपयोग नहीं करना चाहता था। उदाहरण के तौर पर यदि उसे अनेक लोगों को एक छोटा-सा सन्देश भेजना होता, तो वह प्रत्येक से फोन पर बात करके सन्देश भेजता था, जबकि यह कार्य सामान्य एस.एम.एस के द्वारा भी हो सकता था। इसके विपरीत एक कॉलेज का छात्र था, जो बहुत सारी डिग्रियाँ अपने जीवन में उपलब्ध करना चाहता था। वह एक भी विषय अच्छी तरह नहीं पढ़ पाता था। सब विषय थोड़ा-थोड़ा पढ़ लेता था और किसी भी विषय में उसे पूरा ज्ञान नहीं हो पाता था। इस प्रकार वह भी अपना अधिकांश समय गँवा देता था।

समय-नियोजन के लिए सबसे मुख्य बात यह है कि जो कार्य जिस समय करना चाहिए, उसे उसी समय करें।

उदाहरण के तौर पर यदि व्यायाम अथवा स्नान करने का अमुक समय निश्चित किया गया है, तो उसी समय करना चाहिए। इससे हमारी मानसिक ऊर्जा का अपव्यय नहीं होता। इसके अलावा प्रत्येक कार्य को निश्चित अवधि में पूरा करना चाहिए। कार्य को आधा-अधूरा छोड़ने से समय की हानि होती है। कार्य को निश्चित सीमा में पूरा करने से हमारा मनोबल भी बढ़ता है।

कुछ कार्य ऐसे होते हैं, जिन्हें किसी विशेष समय पर ही करना होता है। जैसे किसान यदि निश्चित समय पर बीजारोपण नहीं करे, तो अच्छी फसल नहीं होती। परीक्षा अथवा एडमिशन के लिए निश्चित समय पर आवेदन न भरने से पूरा वर्ष व्यर्थ चला जाता है। क्रिकेट में बैट्समैन अथवा बॉलर पावर-प्ले का समुचित लाभ न उठाएँ, तो उनका प्रदर्शन खराब हो जाता है। जीवन में अवसर सदैव समयसापेक्ष होता है। प्राप्त अवसर का पूरी ऊर्जा से लाभ उठाना समय का सदुपयोग करना है।

हमारे शास्त्र और पूर्वज बार-बार हमें सचेत करते हैं कि युवावस्था का समय हमारे जीवन का महत्त्वपूर्ण समय है। कहीं ऐसा न हो कि यह समय दिवा-स्वप्न में ही व्यर्थ चला जाए और समय के अभाव में हमारा जीवन एकांगी हो जाए। कभी-कभी हम अपनी अव्यवस्थित दिनचर्या के कारण इतने व्यस्त हो जाते हैं कि जिन माता-पिता और गुरु के आशीर्वाद से हम अपने जीवन में आगे बढ़े हैं, उनकी सेवा करने का हमें समय नहीं मिलता। शरीर और मन, दोनों स्फूर्त रहें, तो जीवन में समय के अभाव की समस्या कभी आएगी नहीं। ○○○

ईशावास्योपनिषद (६)

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्दजी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम के संस्थापक सचिव थे। उन्होंने यह प्रवचन संगीत कला मन्दिर, कोलकाता में दिया था। – सं.)

उपनिषद के अनुसार यही कहा गया कि तुम नर हो, कर्म करते हुए ही सौ वर्ष जीने की इच्छा करो। कर्म तुम्हें लिप्त कर लेगा, इससे डरते क्यों हो? कर्म में चिपकने का गुण नहीं है। कर्म कभी नहीं चिपकता है। कर्म तो आसक्ति के कारण चिपकता है। न कर्म लिप्यते नरे – कर्म का लेप नहीं होता। आसक्ति के कारण कर्म का लेप दिखाई देता है, पर वस्तुत: कर्म में लेप करने का गुण नहीं है। हमारी अपनी आसक्ति है, जो कर्म को लेपता प्रदान करती है। यहाँ कहा गया कि क्यों डरते हो? सौ वर्ष तक जीयो, खूब आनन्द से कर्म करो। उसके बाद कहते हैं कि यदि ऐसा तुमने नहीं किया, तो –

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसाऽऽवृता:।
तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जना: ।। ३।।

असूर्यालोक, का भगवान भाष्यकार अर्थ बताते हैं कि ये जो देवता हैं, देवलोक है, सभी भोगयोनियाँ हैं। वहाँ पर भी मनुष्य को ज्ञान नहीं होता है। वहाँ भी देहबोध बना रहता है। भले देवलोक में सब सूक्ष्म शरीर में रहते हैं, परन्तु शरीरबोध वहाँ पर भी बना हुआ है। इसलिए वे कहते हैं कि ब्रह्मलोक से लेकर स्थावर-जंगम, यह जो भिन्न-भिन्न प्रकार की भोग योनियाँ हैं, ये सब के सब गहरे अन्धकार से भरी हुई हैं। शंकराचार्य जी ने व्याख्या की है – अन्धेन तमसावृता माने जहाँ पर द्वैत भाव है, वह तो घोर अंधकार है ही, चाहे वह देवलोक हो, चाहे अन्य कोई भोग योनि हो। असूर्यानाम ते लोका:, लिखते हैं कि देवादि अपि असुरा: – अज्ञान की दृष्टि से ये देवादि भी असुर ही हैं। देवों को भी आत्मज्ञान नहीं है। वे भी भोग योनियाँ हैं। इसलिए वे भी असुर ही कहलाने लायक हैं। यदि उसको यह ज्ञान नहीं हुआ, तो शरीर छोड़ने के पश्चात् ऐसे लोकों को मनुष्य जाता है। यदि प्रथम मंत्र में कहे गये सिद्धान्त को, दूसरे मंत्र के अनुसार व्यवहार में उसने नहीं उतारा, तो वह आत्मघाती है, उसने आत्मा का घात कर लिया। उसके भीतर में जो यह दिव्य आत्मज्ञान भरा हुआ है, उसकी उसने उपेक्षा कर दी, तो मरने के बाद वह भोग योनियों में जायेगा, जो गहरे अंधकार से भरी हुई हैं।

कोई भी लोक हो, चाहे वह ब्रह्मलोक ही क्यों न हो, जहाँ पर द्वैत है, जहाँ पर शरीर का भान है, वह सब कुछ गहरे अंधकार से भरा हुआ लोक है। गुरुजी ने उपदेश करते हुए कहा कि आत्महनो जना – मरने के बाद वह उन लोकों में जाता है, जहाँ पर आत्मघाती लोक जाते हैं। अच्छा ! आत्मघाती का क्या अर्थ है? आत्मघात का एक अर्थ हम जानते हैं, वह है – आत्महत्या करना। तो क्या वह आत्महत्या करता है? यहाँ पर कहते हैं, हाँ, आत्मा जो हमारे भीतर विद्यमान है, उसको न जानना, उसकी उपेक्षा कर देना, यही तो उसकी हत्या करना है। जो हमारे भीतर दिव्य ज्ञान है, उस ज्ञान की हमने उपेक्षा कर दी, वह मानो उसकी हत्या करने के समान है। यह अर्थ यहाँ पर शंकराचार्य हमारे समक्ष रखते हैं। जिस आत्मा की हत्या कर दी, वह आत्मा कैसा होता है? जरा देख तो लें ! उसका स्वरूप क्या है? किस आत्मा की वह हत्या करता है? कौन-सा आत्मतत्त्व मेरे भीतर में भरा है, जिसकी हत्या कर दी। यहाँ पर इन दो श्लोकों में आत्मा के सम्बन्ध में और जिस व्यक्ति ने उस आत्मतत्त्व को जान लिया, उसके सम्बन्ध में दो श्लोकों में वर्णन है। चौथे मंत्र में कहते हैं –

अनेजदेकं मनसो जवीयो
नैनद्देवा आप्नुवन् पूर्वमर्षत्।
तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठ-
त्तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति।। ४।।

ये श्लोक थोड़े technical हैं, परन्तु इतने कठिन नहीं कि हम समझ न सकें। थोड़ा-सा उपनिषद का आधार आत्मतत्त्व के सम्बन्ध में पहले से बना रहे, तो ये बातें समझने में दुरूह नहीं है। एजन, एजने, कम्पनशीलता के अर्थ में होता है। अनेजद, उसमें कम्पनशीलता नहीं है, वह हिलता-डुलता नहीं है। गुरु शिष्य से कह रहे हैं कि जिस आत्मतत्त्व के सम्बन्ध में मैं तुम्हें बताना चाहता हूँ, वह आत्मतत्त्व ऐसा

है। उसमें कम्पनशीलता नहीं है। एकम् – वह एक ही है। जो भी दिखाई दे रहा है, वह एक ही आत्मतत्त्व है, जो सबके भीतर भरा हुआ है। फिर कैसा है? मनसो जवीयो – वह मन से भी अधिक गतिमान है। अभी तो कहा कि उसमें कम्पनशीलता नहीं है और अभी कहा जा रहा है कि वह मन से भी अधिक गतिमान है, तो दोनों में विरोध-सा दिखाई देता है। एक ओर कम्पन का अभाव और दूसरी ओर चलायमानता, मन से अधिक गतिमान। ये इन्द्रियाँ प्रकाश देती हैं, इसीलिए आप शास्त्रों में पढ़ते हैं कि प्रत्येक इन्द्रिय के एक-एक अधिष्ठाता देवता हैं। जैसे यह जो हस्तेन्द्रिय है, ऐसे हर इन्द्रिय का अधिष्ठाता देवता हमारे यहाँ माना गया है। यहाँ पर यह कहा गया कि नैनद्देवा – ये देव माने ये इन्द्रियाँ, ज्ञानेन्द्रियाँ, न आप्नुवन् – उस आत्मतत्त्व को नहीं पा सकीं। आखें देख नहीं सकीं, कान सुन नहीं सके। उसी प्रकार ये जो अन्य तीन ज्ञानेन्द्रियाँ हैं, वे भी उस आत्मतत्त्व को पकड़ नहीं पायीं। यह आत्मतत्त्व इन ज्ञानेन्द्रियों की पकड़ से बाहर है। क्यों बाहर है? क्योंकि वह आत्मतत्त्व आगे गया हुआ है। जब इन्द्रियाँ पकड़ने के लिए गयीं, तो वह आत्मतत्त्व और भी आगे निकल गया। लगता है, इसलिये इन्द्रियाँ उसे पकड़ नहीं पायीं। यह कहने का बड़ा सुन्दर तरीका है। इसका अर्थ हमलोग समझेंगे कि क्या है? तद् धावतो अन्यान् अत्येति – बाकी चीजें दौड़ रही हैं, इन्द्रियाँ दौड़ रही हैं और वह खड़ा होकर के भी इन भागती हुई चीजों को पार कर जाता है। आप देख रहे हैं, भाषा कैसी है उपनिषद की ! आत्मतत्त्व स्थिर है, बाकी चीजें भाग रही हैं, परन्तु आत्मतत्त्व खड़ा होकर के भी भागती हुई चीजों को पार कर जाता है।

यह जो मातरिश्वा है, Cosmic energy है। अप: दधाति माने यह जीवों में कर्म की प्रेरणा देता है। कौन भिन्न-भिन्न प्रकार की प्रेरणाओं को प्रदान करता है? वह मातरिश्वा है, Cosmic energy है। यह इसका अर्थ हुआ।

अब इसको समझने की चेष्टा करें। पहला तो यह लगता है कि यहाँ आत्मतत्त्व के सम्बन्ध में कैसे विरोधी गुण प्रदर्शित किये गये हैं कि वह चलता नहीं है फिर कहा गया कि वह चलता है। उस आत्मतत्त्व में किसी प्रकार का कम्पन नहीं है। वह बहुत दूर है। वह सबसे समीप है। वह सबके भीतर में रमा हुआ है। वह सबके बाहर में स्थित है। अब इन विरोधी गुणों के द्वारा उस आत्मतत्त्व का वर्णन किया गया है। इसका क्या तात्पर्य है? इसको Process of dilectics – वैतर्किक प्रणाली कहते हैं। जब कोई विषय बहुत गूढ़ होता है, अत्यन्त सूक्ष्म होता है, तो वैतर्किक प्रणाली का आश्रय लिया जाता है। उसके द्वारा उसे समझाने की चेष्टा की जाती है। एक विज्ञान का उदाहरण देता हूँ, इससे शायद समझने में सुविधा हो जाय। यह जो इलेक्ट्रॉन है, इसकी गति किसके समान है? वह particle (कण) है अथवा wave (तरंग) है? क्या है? देखा गया कि electron ठीक पकड़ में नहीं आता। कभी-कभी उसमें particle के गुण दिखाई देते हैं और कभी-कभी उसमें wave के गुण दिखाई देते हैं। कभी तरंग के समान वह वर्तन करता है और कभी वह कण के समान वर्तन करता है, तब यह कहना अत्यन्त कठिन है कि इलेक्ट्रॉन कणात्मक है या तरंगात्मक? उसमें दोनों गुण दिखाई देते हैं। वैज्ञानिकों ने एक नया शब्द गढ़ दिया wavicle । यह इलेक्ट्रॉन कैसा है? यह wavicle है। यह wave और particle दोनों के भी समान है, इसलिये wave का wav ले लिया और particle का icle ले लिया और दोनों को जोड़ कर एक नया शब्द wavicle गढ़ लिया।

इस वैतर्किक प्रणाली में अत्यन्त सूक्ष्म वस्तु जो समझ में नहीं आती है, वहाँ पर विरोधी गुणों का प्रदर्शन करते हुए, विरोधी गुणों के माध्यम से, उस वस्तु का विचार किया जाता है, उस वस्तु का वर्णन किया जाता है। यहाँ पर भी वही बात कही गई कि आत्मतत्त्व अत्यन्त सूक्ष्म, अत्यन्त गहन है, इसलिए वैतर्किक प्रणाली का यहाँ आश्रय लिया गया। इसके विपरीत गुण दिखाये गये, विरोधी गुण दिखाये गये। **(क्रमश:)**

पृष्ठ २६० का शेष भाग

तथा तत्प्रेरित कर्म और उसके संस्कार प्राणायम द्वारा दुर्बल होते हैं। प्राणायाम एक प्रकार की शरीर और इन्द्रियों की निष्कर्मता है। वह प्राण की क्रिया है, जिससे शरीर और इन्द्रियों के साथ आसक्ति या सम्पर्क कम होता है। इस तरह ज्ञान का आवरण क्षीण होता है। प्राणायाम से धारणा में भी सहायता होती है। श्रीरामकृष्ण और माँ सारदा ने कभी प्राणायाम को प्रोत्साहित नहीं किया। इसका कारण यह है कि उसे अत्यधिक महत्त्वपूर्ण देने पर देहात्म-बोध की वृद्धि होती है। तो भी हमारे दैनन्दिन ध्यान के पूर्व कुछ समय के लिए सद्गुणों को अन्दर लेने और बाहर निकलने का सुझाव मन को देते हुए नाड़ी शुद्धि करने में कोई क्षति नहीं है। OOO

लघु-वाक्यवृत्ति
श्रीशंकराचार्य

(अनुवाद : स्वामी विदेहात्मानन्द)

श्रद्धालुर्ब्रह्मतां स्वस्य चिन्तयेद् बुद्धिवृत्तिभिः।
वाक्यवृत्त्या यथाशक्ति ज्ञात्वा ह्यभ्यस्यतां सदा ।।१६।।

अन्वयार्थ – **श्रद्धालुः** श्रद्धालु को **बुद्धि-वृत्तिभिः** (अपनी समस्त) बुद्धि-वृत्तियों की एकाग्रता के द्वारा **स्वस्य ब्रह्मतां** अपने ब्रह्मभाव का **चिन्तयेत्** चिन्तन करना चाहिये। **ज्ञात्वा** तत्त्व को जानकर **वाक्यवृत्त्या** महावाक्य की वृत्तियों द्वारा **हि** ही **सदा** सर्वदा **यथाशक्ति** अपनी पूरी क्षमता के साथ **अभ्यस्यताम्** इसका अभ्यास करना चाहिये।

भावार्थ – श्रद्धालु को अपनी समस्त बुद्धि-वृत्तियों की एकाग्रता के द्वारा अपने ब्रह्मभाव का चिन्तन करना चाहिये। तत्त्व को जानकर महावाक्य की वृत्तियों द्वारा ही सर्वदा अपनी पूरी क्षमता के साथ इसका अभ्यास करना चाहिये।

– टीका –

स्वीय-ब्रह्म-सुखम् आत्माकारान्तःकरणेन जानीयात् इत्यर्थः। एवं यथाबुद्धि अनुसारेण वाक्यवृत्त्या वाक्यवृत्ति-ग्रन्थालोचनेन यत् वा महावाक्य-वृत्त्या स्वस्य ब्रह्मत्वं एकाग्रतया ज्ञात्वा सदा अभ्यस्यताम्।

'आसुप्तेरामृतेः कालं नयेद् वेदान्तचिन्तया।
दद्यान्नावसरं किंचित् कामादीनां मनागपि।'

इति वचनात्।।

– भावार्थ –

तात्पर्य यह कि आत्माकार-आकारित अन्तःकरण के द्वारा अपने ब्रह्मसुख का अनुभव करना चाहिये। इस प्रकार, अपनी समझ के अनुसार, वाक्य-वृत्ति ग्रन्थ में निरूपित महावाक्य की सहायता से बुद्धि की एकाग्रता के द्वारा अपने ब्रह्मत्व को जानकर निरन्तर उसका अभ्यास करना चाहिये। कहा भी है – "जब तक निद्रा अथवा मृत्यु न आ जाय, तब तक वेदान्त के चिन्तन में ही कालक्षेप करना चाहिये। मन को क्षण भर के लिये भी विषय-वासनाओं की ओर जाने का अवसर नहीं देना चाहिये।"।।१६।।

तच्चिन्तनं तत्कथनं तत्परस्पर-बोधनम्।
एतदेक-परत्वं च ब्रह्माभ्यासं विदुर्बुधाः ।।१७।।

अन्वयार्थ – **तत्** उस (ब्रह्म) का **चिन्तनं** चिन्तन **तत्** उसकी **कथनं** चर्चा (उपदेश) **तत्** उसका **परस्पर-बोधनं** एक-दूसरे को समझाना **च** और **एतद्-एकपरत्वं** उसी के प्रति अनन्यता (इसी को) – **बुधाः** विवेकी लोगों ने **ब्रह्माभ्यासं** ब्रह्मज्ञान (जीव-ब्रह्म का एकत्व-बोध) के अभ्यास का हेतु **विदुः** जाना था।

भावार्थ – उस (ब्रह्म) का चिन्तन, उसकी चर्चा, उसका एक-दूसरे को समझाना और उसी के प्रति अनन्यता (इसी को) – विवेकी लोगों ने ब्रह्मज्ञान (जीव-ब्रह्म का एकत्व-बोध) के अभ्यास का हेतु जाना था।

– टीका –

तत् एव अभ्यास-स्वरूपं दर्शयति – तच्चिन्तनम् इति। मनसा विषयान्तर-निरासेन तस्य ब्रह्मणः एव चिन्तनम्, तस्यैव कथनम् वेदान्त-वाक्य-जातेन तस्यैव अन्योऽन्यं बोधने प्रकारः एतदेक-परत्वं शुद्ध-चैतन्य-एकपरता-ज्ञानम्, 'तमेवैकं जानथ आत्मानमन्या वाचो विमुञ्चथाऽमृतस्यैष सेतुः।।' इति श्रुतेः एतत् सर्वं ब्रह्माभ्यास-लक्षणम् आचार्यैः प्रतिपादितम् इत्यर्थः।।

– भावार्थ –

अब 'तच्चिन्तनम्' आदि के द्वारा उसी (महावाक्य) के अभ्यास का स्वरूप बताते हैं। मन के द्वारा, अन्य सभी विषयों का निराकरण करके, केवल ब्रह्म का ही चिन्तन, उसी की चर्चा, वेदान्त-वाक्यों द्वारा आपस में उसी का बोध कराना – यह एकनिष्ठा – इस शुद्ध-चैतन्य के प्रति एकाग्रता का बोध ही श्रुति में भी कथित है – 'केवल उस आत्मा (ब्रह्म) को ही जानो, अन्य समस्त निरर्थक वाक्यों को त्याग दो; यही आत्मज्ञान की प्राप्ति के लिये सेतु-स्वरूप है।' यह सभी आचार्यों द्वारा ब्रह्म-अभ्यास के उपायों के रूप में प्रस्तुत किये गये हैं।।१७।।

देहात्म-धीवद्-ब्रह्मात्म-धी-दार्ढ्ये कृतकृत्यता।
यदा तदायं म्रियतां मुक्तोऽसौ नात्र संशयः ।।१८।।

अन्वयार्थ – (जैसे संसारी जीव) **देहात्म-धी-वत्** देह के साथ आत्मा की अभिन्नता का बोध रखता है, (वैसे ही) **ब्रह्मात्म-धी-दार्ढ्ये** ब्रह्म तथा आत्मा के एकत्व का बोध दृढ़ हो जाने में (ही व्यक्ति के) **कृतकृत्यता** कर्मों की सार्थकता है। **अयं** ऐसा (कृतकृत्य) व्यक्ति **यदा तदा** जब (और जहाँ भी) **म्रियताम्** मरे, (वस्तुतः) **असौ** वह **मुक्तः**

मुक्त (ही) है, **अत्र** इसमें **न संशयः** कोई सन्देह नहीं।

भावार्थ – (जैसे संसारी जीव) देह के साथ आत्मा की अभिन्नता का बोध रखता है, (वैसे ही) ब्रह्म तथा आत्मा के एकत्व का बोध दृढ़ हो जाने में (ही व्यक्ति के) कर्मों (जीवन) की सार्थकता है। ऐसा (कृतकृत्य) व्यक्ति जब (और जहाँ भी) मरे, (वस्तुत:) वह मुक्त (ही) है, इसमें कोई सन्देह नहीं।

– टीका –

ग्रन्थाभ्यास-फलम् आह – 'देहात्म-धीवद्' इति। यथा देहात्मबुद्धिः दृढतरा अस्ति, तथा ब्रह्मात्म-बुद्धि-दार्ढ्ये सति कृतकृत्यत्वम् इत्यर्थः। तत् उक्तं उपदेश-साहस्र्यां – 'देहात्म-ज्ञानवद्-ज्ञानं देहात्म-ज्ञान-बाधकम्। आत्मन्येव भवेद्यस्य स नेच्छन्नपि मुच्यते।' इति।

एवं यदा तदा अयं म्रियतां, पंच-भूतात्मकं देह-कंचुकं परित्यज्य अपरिच्छिन्न-ब्रह्म-स्वरूपेण तिष्ठतु, एवंभूता अवस्था एव विदेहमुक्तिः इत्यर्थः। 'आत्मलाभात् न परं विद्यते' इति। 'ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवति', 'भिद्यते हृदय-ग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्व-संशयाः। क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे।' 'अध्यात्म-योगाधिगमेन देवं मत्वा धीरो हर्षशोकौ जहाति' इत्यादि श्रुतयः आत्मविदः अनर्थ-हानिम् आत्म-स्वरूप-सुख-प्राप्तिं च प्रतिपादयन्ति इत्यर्थः।।

– भावार्थ –

अब इस 'देहात्मधीवद्' श्लोक के द्वारा इस ग्रन्थ के अभ्यास का फल बताते हैं कि जैसे अज्ञानी में देहात्म-बुद्धि अत्यन्त दृढ़ होती है, वैसे ही ब्रह्मात्म-बुद्धि में दृढ़ता आ जाने पर जीवन को कृतकृत्यता प्राप्त हो जाती है। उपदेश-साहस्री (४/५) में कहा गया है – "जैसे अज्ञानी व्यक्ति को असन्दिग्ध रूप से देह में ही आत्मबोध होता है, वैसे ही जिस व्यक्ति में उसका बाधक – 'देह आत्मा नहीं है' – ऐसा नि:संशय बोध हो जाता है, वह न चाहते हुए भी अवश्य मुक्त होगा।"

जब ऐसी अवस्था प्राप्त हो जाती है, तब ज्ञानी की – जहाँ कहीं भी, जिस भी अवस्था में मृत्यु हो, वह इस पंच-भूतात्मक शरीर-रूपी वस्त्र को त्यागकर, अपने असीम ब्रह्म-स्वरूप में स्थित हो जाता है; इसी अवस्था को 'विदेह-मुक्ति' कहा जाता है। "आत्मा की प्राप्ति से बढ़कर दूसरा कुछ नहीं है।", "ब्रह्म को जानकर वह ब्रह्म ही हो जाता है", "उस ब्रह्म के पर (उत्कृष्ट) तथा अवर (निकृष्ट) स्वरूप की अनुभूति हो जाने पर, उस (साधक) के हृदय की (सारी) गाँठें टूट जाती हैं, शंकाएँ नष्ट हो जाती हैं; और उसके समस्त कर्मों का भी क्षय हो जाता है"; "अध्यात्म-योग के अभ्यास द्वारा, धीर व्यक्ति, अपने दिव्य स्वरूप को जानकर, हर्ष तथा शोकों से पार हो जाता है।" उपरोक्त श्रुति-वाक्य – आत्मज्ञानी के अनर्थ-नाश तथा आत्म-स्वरूप (के बोध) से सुखप्राप्ति का निरूपण करते हैं।।१८।।

– टीका –

अन्तर्यामी समस्तेशो यः साकेतपतिर्विभुः।
सन्तस्तमेव पृच्छन्तु यदत्र स्खलितं मम।।
कृत्वा पुष्पाञ्जलिं टीकां भगवच्चरणाब्जयोः।
पुण्यं मयार्जितं किंचित् तद् ब्रह्मणि समर्पितम्।।

इति लघु-वाक्य-वृत्ति-टीकायां पुष्पांजलि-अभिधायां वेदान्त-प्रकरणं सम्पूर्णम्।।

– भावार्थ –

इस व्याख्या के दौरान यदि मुझसे कोई त्रुटि हुई हो, तो उसके लिये – सबके अन्तर्यामी, सबके प्रभु, सर्वव्यापी साकेत के अधिपति (श्रीरामचन्द्र) ही उत्तरदायी हैं। श्री भगवान शंकराचार्य के चरण-कमलों में 'पुष्पांजलि' के रूप में टीका लिखकर, मेरे द्वारा जो थोड़ा-बहुत पुण्य अर्जित हुआ है, उसे मैं ब्रह्म को ही समर्पित करता हूँ।

'लघु-वाक्य-वृत्ति' नामक वेदान्त के इस प्रकरण ग्रन्थ की पुष्पांजलि नाम की टीका पूरी हुई।। **(समाप्त)**

पृष्ठ २६३ का शेष भाग

इसी प्रकार उन्होंने माँ के साथ बहुत-सी बातें कीं। मुझे अब क्या वे सब बातें याद हैं, जो उन्हें लिखकर सबको बताऊँगा?

इस भाव के चले जाने के बाद वे अपने दाहिने हाथ की मुट्ठी को सामने रखकर अर्ध-निमीलित नेत्रों के साथ भावमुख में स्वयं से ही कहने लगे, "थू थू, जिनका मन कामिनी-कांचन में आसक्त है, माँ, उनका तो कुछ होगा नहीं" – इतना कहकर उन्होंने कितने ही बार अपने हाथ पर थूका। इससे बिछा हुआ जाजिम तक गीला हो गया।

उस दिन मैंने ठाकुर में जो अद्‌भुत भाव देखे थे, वे मेरे सारे जीवन के अवलम्बन बने हुए हैं। मेरे ही समान ही जो अन्य लोग भी वहाँ थे, उनका भी वैसा ही हुआ था। **(क्रमशः)**

स्वामी विवेकानन्द और श्रीरामकृष्ण देव की सामाजिक समरसता

स्वामी सत्यरूपानन्द

सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर

हमारे रामकृष्ण संघ या रामकृष्ण मिशन की परम्परा में, स्वामी विवेकानन्द जी के जीवन में राजस्थान का बहुत बड़ा योगदान है। स्वामी विवेकानन्द जी शिकागो में जाकर विश्व-प्रसिद्ध हुए, किन्तु उसके पहले जब वे एक अपरिचित परिव्राजक संन्यासी के रूप में भारत-भ्रमण कर रहे थे, तब राजस्थान आये थे। राजस्थान में घूमते हुए वे माउण्ट आबू पहुँचे। आज से १२५ साल पहले की बात है। गर्मी के दिन थे। वहाँ एक पहाड़ की गुफा में रहकर स्वामीजी तपस्या करने लगे। स्वामी विवेकानन्द जैसे ऋषि, परमहंस की प्रतिभा कैसे छिप सकती थी ! तब वे २७-२८ वर्ष के युवक थे, किन्तु ब्रह्मज्ञ पुरुष थे। उनकी प्रतिभा के प्रभाव से लोग परिचित हुए।

वर्ण-धर्मातीत संन्यासी

माउण्ट आबू में एक मुसलमान वकील रहते थे। वे धार्मिक प्रवृत्ति के, उदार और बड़े जिज्ञासु थे। विवेकानन्द जी से उनका परिचय हुआ। वे स्वामी विवेकानन्द जी के ज्ञान से बहुत प्रभावित और घनिष्ठ हो गये।

एक दिन वकील साहब ने स्वामीजी से पूछा – स्वामीजी, मैं आपकी कुछ सेवा करना चाहता हूँ। स्वामीजी ने कहा – यदि आप मेरी सहायता करना चाहते हैं, तो मैं पहाड़ की इस गुफा में रहता हूँ। वर्षा ऋतु आनेवाली है। इसमें दरवाजा नहीं है। तपस्या में असुविधा होगी। इसलिये इसमें आप दरवाजा लगवा दीजिए। ये मुसलमान वकील साहब माउण्ट आबू में ही कहीं दूर, शहर के बाहर, रहते थे। उनका एक बंगला था, जिसमें वे अकेले रहते थे। उन्होंने स्वामीजी से कहा – स्वामीजी, अगर आपको आपत्ति न हो, तो आप मेरे घर चलिए। मैं शहर के बाहर एक बंगले में रहता हूँ, बिल्कुल एकान्त है, वहाँ रहकर आप तपस्या कीजिए। आपके रहने-खाने की सारी व्यवस्था मैं करूँगा। मैं आपके लिए एक ब्राह्मण रसोईया रख दूँगा, वहाँ हिन्दू पद्धति से आपका भोजन बनेगा।'

स्वामीजी ने हँसते हुए कहा – अरे मौलवी साहब, मैं तो संन्यासी हूँ और हम संन्यासियों की कोई जाति नहीं होती। जब संन्यास लेते हैं, तो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इन चारों वर्णों से अतीत हो जाते हैं। इसलिये यह अति आश्रम कहा जाता है। इन वर्णों से जो ऊपर उठ जाए, उसके लिये क्या जाति-भेद ! स्वामीजी ने कहा – चलिए, मैं आपका घर देखना चाहता हूँ। स्वामीजी ने जाकर घर देखा। वह स्थान उनको पसन्द आया। वे वहीं रहकर शास्त्र-अध्ययन और तपस्या करने लगे। वकील साहब को भी साधु-संग का लाभ मिला।

गर्मी के दिन थे। संयोग से खेतड़ी के राजा अजीत सिंह भी आबू में थे। राजा लोग गर्मी में माउण्ट आबू में चले जाया करते थे। खेतड़ी-नरेश भी वहाँ अपनी कोठी में रहते थे। उनके व्यक्तिगत सचिव थे मुंशी जगमोहन लाल। जगमोहन लाल जी वकील साहेब को जानते थे। एक दिन वकील ने जगमोहन लाल से कहा – भाई जगमोहन लाल ! हमारे यहाँ एक बहुत बड़ा दरवेश आया है। ऐसा साधु मैंने कभी देखा नहीं। आप एक बार मिल लें। जगमोहन लाल के मन में देखने की जिज्ञासा हुई।

जिस दिन जगमोहन लाल वकील साहब के साथ स्वामीजी के दर्शन करने आये, संयोग से स्वामीजी विश्राम कर रहे थे। साधुओं को क्या ! एक गेरुआ वस्त्र लपेटे विश्राम कर रहे थे। जगमोहन लाल ने देखकर सोचा, जैसे लाखों फकीर घूमते हैं, वैसे ही ये भी हैं। उन्होंने वकील से कहा – मुझे क्या दिखाने लाये हैं, ऐसे तो लाखों फकीर घूमते रहते हैं।

थोड़ी ही देर में स्वामीजी की नींद खुली। एक चटाई पर कम्बल लेकर सोये हुए थे। हम लोग स्वामी विवेकानन्द को शिव के अंशावतार मानते हैं। उनकी माँ को पुत्रियाँ थीं, कोई पुत्र नहीं था। उनकी माँ ने बहुत तप-व्रत किया, बाबा विश्वनाथ से बहुत प्रार्थना की। काशी में उनकी एक सम्बन्धी ने बाबा विश्वनाथ के पास जाकर जल, बेल चढ़ाया, प्रार्थना की, तब भगवान शंकर की कृपा से स्वामीजी को उन्होंने पुत्र रूप में पाया था।

स्वामीजी 'शिव-शिव' कहते हुए उठकर बैठ गये।

जगमोहन लाल ने उनको प्रणाम करने के बाद कहा – स्वामीजी, आप तो हिन्दू संन्यासी हैं और यहाँ मुसलमान के घर में रहते हैं, उनका छुआ भोजन भी करते होंगे। स्वामीजी ने उनको ऊपर से नीचे तक देखकर कहा – ''महाशय, देखने में तो आप हिन्दू लगते हैं, पर आपको अपने हिन्दू धर्म का ज्ञान नहीं है। अरे मैं संन्यासी हूँ, मेरी क्या जाति है ! मेरे लिये क्या हिन्दू, क्या मुसलमान, क्या शूद्र, क्या ब्राह्मण, क्या वैश्य?'' जगमोहन लाल संकोच में पड़ गये कि बात तो ठीक है। हम संन्यासी लोग जब भिक्षा करते हैं, तो किसी से जाति नहीं पूछते हैं। जहाँ गये, 'नारायण हरि' कहा, जो भिक्षा में मिला, खा लिया। अब जगमोहन लाल को लगा कि कुछ भूल हो गयी। उसके बाद स्वामी विवेकानन्द जी ने जो बात कही, वही बात भारतीय धर्म, हिन्दू धर्म और वेदान्त की बात है। स्वामीजी ने कहा – देखिये, मैं सब धर्मों में ब्रह्म-दर्शन करता हूँ। यही हमारे धर्म का परम आदर्श है। स्वामी विवेकानन्द मंत्रद्रष्टा ऋषि थे, ब्रह्मज्ञ पुरुष थे। उन्होंने कहा कि मैं सबमें ब्रह्म के दर्शन करता हूँ, इसलिए मेरे मन में कोई भेद नहीं है। उसके बाद जगमोहन से बात की। वे बड़े प्रभावित हुए।

यह बात जगमोहनजी ने राजा अजीत सिंह को बतायी – महाराज, आज एक संन्यासी का मुझे दर्शन हुआ है, ऐसा संन्यासी मैंने जीवन में आज तक कभी नहीं देखा। अंग्रेजी, और कई भाषाओं और शास्त्रों के विद्वान हैं। उनकी प्रशंसा सुनकर राजा अजीत सिंह को स्वामीजी के दर्शन की इच्छा हुई। उन्होंने जगमोहन लाल को स्वामीजी को लाने के लिये भेजा।

जगमोहन लाल ने राजा की इच्छा स्वामीजी को बताई। स्वामीजी ने कहा, आज नहीं, कल आऊँगा। जगमोहन लाल ने राजा को सूचना दे दी। राजा को बड़ी उत्सुकता हुई। उन्होंने कहा कि चलो, मैं अभी चलकर उनसे मिलूँगा। जगमोहन लाल ने पुन: जाकर राजा की बात बताई। स्वामीजी ने परख लिया कि सचमुच इस व्यक्ति की इच्छा साधु संग करने की है। स्वामीजी ने कहा, ठीक है, चलो चलता हूँ। स्वामीजी जाकर राजा अजीत सिंह से मिले। राजा अजीत सिंह जी की श्रद्धा बढ़ी और उन्होंने स्वामीजी को अपना गुरु स्वीकार किया। वे स्वामी विवेकानन्द के शिष्य हो गये।

राजा अजीत सिंह को कोई पुत्र नहीं था। उन्होंने बड़े कातर होकर अपने गुरु स्वामी विवेकानन्द से प्रार्थना की – महाराज आप मुझे आशीर्वाद दीजिए, जिससे मेरे यहाँ पुत्र हो, जो मेरे राज्य को चलाये। पहले तो स्वामीजी ने 'भगवान की इच्छा' कह दिया, पर बहुत आग्रह करने पर उन्होंने राजा को आशीर्वाद दिया कि आपको भगवान की कृपा से पुत्र-प्राप्ति होगी। एक-डेढ़ वर्ष के भीतर राजा अजीत सिंह के यहाँ पुत्र का जन्म हुआ। स्वामीजी अमेरिका जाने के पहले वहाँ स्नेह-आशीर्वाद देने फिर आये थे।

जयपुर के राजा के दीवान थे। वे भी स्वामीजी से बहुत प्रभावित थे। उनको भी स्वामीजी ने कृपापूर्वक भगवान कृष्ण का दर्शन कराया था।

स्वामी विवेकानन्द जी ने क्या किया हमारे लिए? क्यों हम उनकी इतनी पूजा करते हैं? क्यों सब लोग उनको भगवान के समान मानते हैं? स्वामी विवेकानन्द ने अपने गुरु के नाम से एक संघ बनाया, जिसे आप सभी रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के नाम से जानते हैं।

प्राचीन काल से हमारे देश में जब-जब क्रान्ति हुई, जब अधर्म हुआ, तो धर्माचार्यों ने ही इस देश को रास्ता दिखाया।

जब भगवान राम के जन्म के बाद राक्षसों के अत्याचार बढ़े और उस अत्याचार से ऋषि और सभी लोग पीड़ित हो गये। महाराज दशरथ थे, महाराज जनक थे। दशरथजी के पास इतनी बड़ी सेना थी कि इन्द्र की सेना भी उनसे पराजित हो जाए। इन्द्र भी उनसे लड़ने का साहस नहीं कर सकते थे। अंशावतार भगवान परशुराम स्वयं विराजमान थे, जिन्होंने इक्कीस बार क्षत्रियों का नाश कर दिया था। फिर भी राक्षसों द्वारा अत्याचार हो रहा था। राक्षस ऋषियों के यज्ञ ध्वस्त कर देते थे, ऋषियों को पूजा-अर्चना नहीं करने देते थे, उन्हें मार कर खा जाते थे। क्या उस समय राजाओं ने इस देश की रक्षा की? राजा जनक और महाराज दशरथ ने रक्षा की या अन्यान्य राजाओं ने रक्षा की? राजाओं ने इस देश की रक्षा नहीं की। जब भी हमारे देश पर, हमारे हिन्दू समाज पर आपत्ति आती है, विपत्ति आती है और जब समाज अंधकार में भटकने लगता है, तब कोई ऋषि, कोई अवतार, कोई महापुरुष ही इस देश को मार्गदर्शन करते हैं। इस देश का उद्धार करते हैं।

भगवान राम के समय ऋषि विश्वामित्र आये। आप सभी जानते हैं कि ऋषि होने के पूर्व विश्वामित्रजी सम्राट थे। उन्हें राजा होने का गर्व था। वे बड़े शक्तिशाली राजा थे। उन्होंने कई राज्यों पर विजय प्राप्त की थी। किन्तु राजा विश्वामित्र से भारत का उद्धार नहीं हुआ। **(क्रमश:)**

रामकृष्ण संघ के संन्यासियों का दिव्य जीवन (३०)

स्वामी भास्करानन्द

(रामकृष्ण संघ के महान संन्यासियों के जीवन के प्रेरणाप्रद प्रसंगों की सरल, सरस और सारगर्भित प्रस्तुति स्वामी भास्करानन्द जी महाराज, मिनिस्टर-इन-चार्ज, वेदान्त सोसायटी, वाशिंग्टन ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'Life in Indian Monasteries' में की है। 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु इसका हिन्दी अनुवाद रामकृष्ण मिशन आश्रम, भोपाल के ब्रह्मचारी चिदात्मचैतन्य ने किया है। – सं.)

स्वामी शुद्धानन्द महाराज से सम्बन्धित संस्मरण

हमारे संघ के नवें संघाध्यक्ष स्वामी माधवानन्द महाराज ने एक बार स्वामी शुद्धानन्द महाराज के विषय में कहा था, ''वे मेरे मित्र, मार्गदर्शक और दार्शनिक थे।''

स्वामी शुद्धानन्द

मैं पहले से ही जानता था कि स्वामी शुद्धानन्द (१८७२-१९३८), जो हमारे संघ में 'सुधीर महाराज' के नाम से जाने जाते हैं, हमारे संघ के पाँचवें संघाध्यक्ष तथा स्वामी विवेकानन्द के अत्यधिक उन्नत शिष्यों में से एक थे। यह भी मुझे ज्ञात था कि उन्होंने स्वामी विवेकानन्द की राजयोग, कर्मयोग, भक्तियोग, ज्ञानयोग तथा अन्य पुस्तकों का बँगला भाषा में अनुवाद किया था। उनका उत्कृष्ट अनुवाद मूल अंग्रेजी पाठ की सुन्दरता एवं उत्कर्षता को सम्पूर्ण रूप से बनाए हुये था। तथापि स्वामी माधवानन्द महाराज के शब्दों ने मुझे व्यक्ति के रूप में स्वामी शुद्धानन्द महाराज के विषय में और अधिक जानने के लिए उत्सुक किया। वे कैसे दिखते थे, दूसरों के साथ कैसा व्यवहार करते थे इत्यादि बातें जानने की मेरी इच्छा थी। उस समय मैं संन्यासी था और बेलूड़ मठ में रहता था। सौभाग्य से, मुझे मालूम हुआ कि स्वामी शुद्धानन्द महाराज को जानने वाले कुछ वरिष्ठ संन्यासीगण बेलूड़ मठ में रहते हैं। मैंने सोचा कि वे लोग मेरी जिज्ञासा को पूर्ण कर सकते हैं। स्वामी गंगेशानन्द महाराज उनमें से एक थे।

अत: मैंने स्वामी गंगेशानन्द महाराज के पास जाकर पूछा, ''महाराज, स्वामी शुद्धानन्द महाराज के बारे में बताइये कि वे कैसे दिखते थे।''

गंगेशानन्द महाराज ने याथातथ्य वर्णन किया, ''वे मध्यम ऊँचाई के, गोरा रंग और अधिक दुबले-पतले थे। वे थोड़ी तीरछी दृष्टि वाले थे और उनके शरीर पर जन्मगत कुछ दाग थे।''

मैंने कहा, ''उनके स्वभाव के विषय में बताइये। क्या वे बहुत गम्भीर स्वभाव के या मिलनसार स्वभाव के थे?''

स्वामी गंगेशानन्द जी महाराज ने उत्तर दिया, ''नहीं, नहीं, वे गम्भीर या वैसे कुछ भी नहीं थे। वास्तव में, उनके पास बहुत सरलता से जाया जा सकता था। सभी युवा या वृद्ध, उनके साथ स्वच्छन्दता से मिल सकते थे। स्पष्टवादिता और निष्कपटता उनका विशेष गुण था। लेकिन उनकी निष्कपटता कभी-कभी अन्य लोगों के लिए थोड़ी-बहुत जटिलता उत्पन्न कर देती थी। कई वर्ष पहले प्रथम संघाध्यक्ष स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज कनखल सेवाश्रम में गये हुए थे। जब वे आश्रमों में जाते, जैसे कनखल में, तो वे सर्वदा उनको दान देते थे। जब वे इन आश्रमों में जाते, तो बहुत से भक्त उनका दर्शन करने के लिए आते और प्राय: प्रसाद पाने तक वहाँ पर रुके रहते थे। अत: तात्कालिक रूप से आश्रम का व्यय बढ़ जाता था। आश्रम पर आर्थिक दबाव न पड़े, इसलिये स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज दान देते थे।

''कनखल सेवाश्रम के अध्यक्ष स्वामी कल्याणानन्द महाराज ने वार्तालाप के समय स्वामी शुद्धानन्द महाराज को संयोग से बताया कि जो रुपये स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज ने दिए हैं, वह उनकी यात्रा में हुये व्यय से कम हैं। स्वामी शुद्धानन्द महाराज ने निष्कपट भाव से, सहजतापूर्वक स्वामी कल्याणानन्द ने जो कहा, उसे स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज को कह दिया। इसलिये स्वामी ब्रह्मानन्द जी ने अविलम्ब एक पंचांग लाने को कहा और कनखल छोड़ने के शीघ्रातिशीघ्र उपयुक्त समय के लिए परामर्श लिया। यह सुनने के बाद कल्याणानन्द महाराज स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज के पास दौड़ते हुए गये और उनके चरणों में गिर कर कनखल से नहीं जाने के लिए बारम्बार प्रार्थना करने लगे। तदनन्तर स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज ने अपना मन परिवर्तित कर लिया।

''स्वामी शुद्धानन्द महाराज की जीवनचर्या अत्यधिक तपस्यापूर्ण थी। वे एक दिन में दो या तीन बीड़ी पीते थे, यही उनकी एकमात्र विलासिता थी। (रामकृष्ण संघ में मदिरा

या अन्य मादक पदार्थों का सेवन कठोर निषिद्ध है। एकमात्र तम्बाकू की अनुमति है, लेकिन उसको भी प्रोत्साहित नहीं किया जाता।)

बीड़ी के एक पैकेट का मूल्य उस समय केवल आठ या दस पैसे था। लेकिन उनके पास पैसे नहीं थे और प्राय: उसे खरीदने में उन्हें कठिनाई होती थी। एक दिन वे उद्बोधन (रामकृष्ण संघ का एक प्रकाशन विभाग) जहाँ पर रामकृष्ण संघ के महासचिव स्वामी सारदानन्द जी महाराज रहते थे, वहाँ गये। स्वामी शुद्धानन्द ने स्वामी सारदानन्द जी से कहा, 'मैंने स्वामीजी की इन सारी पुस्तकों का अनुवाद किया, लेकिन ऐसा मेरा भाग्य है कि मुझे एक दिन में दो या तीन बीड़ी खरीदने के लिए भी पैसे प्राप्त नहीं होते !'

''यह सुनने के बाद स्वामी सारदानन्द जी ने गणेन महाराज (स्वामी सारदानन्द जी के सहायक एक संन्यासी) को बुलाकर कहा, ''अब से मैं प्रत्येक महिना प्रभु (स्वामी शुद्धानन्द का उपनाम) को पाँच रुपये दिया करूँगा।' ''

कुछ वर्षों बाद एक अन्य घटना घटी। तब स्वामी शुद्धानन्द जी रामकृष्ण संघ के महासचिव थे। उस समय ताराशर पण्डित बेलूड़ मठ में कनिष्ठ संन्यासियों को शास्त्र पढ़ाते थे। एक दिन ताराशर पण्डित स्वामी शुद्धानन्द महाराज से किसी शास्त्र पर वाद-विवाद करने लगे। पण्डित धीरे-धीरे वाद-विवाद से उत्तेजित हो गये और अपना नियंत्रण खो बैठे। उन्होंने क्रोधित होकर स्वामी शुद्धानन्द को कुछ अनुचित बात कह दी। अगले दिन अपनी भूल को समझ कर उन्होंने सोचा, ''क्रोधवश मैंने रामकृष्ण संघ के महासचिव स्वामी शुद्धानन्दजी महाराज का अपमान किया है। इस घटना के बाद वे लोग मुझे यहाँ नहीं रहने देंगे !'' ऐसा सोचकर वे मन ही मन अपना बोरिया-बिस्तर लेकर जाने के लिए तैयार हो रहे थे।

उसी समय शुद्धानन्द महाराज पण्डितजी के कमरे के बगल से जा रहे थे। अपने कमीज की जेब से एक बीड़ी निकाल कर उन्होंने पण्डितजी को दिया और कहा, ''पण्डित, धूम्रपान करो।'' महाराज ताराशर पण्डित के अपमानजनक शब्दों से किसी भी प्रकार से प्रभावित नहीं हुए। वास्तव में, वे उनके अप्रिय व्यवहार को पूर्णत: भूल चुके थे। ऐसे थे स्वामी शुद्धानन्द जी महाराज !

अपने गुरु स्वामी विवेकानन्द के समान ही स्वामी शुद्धानन्द जी भी फोटोग्राफिक स्मृति के थे। इससे सम्बन्धित स्वामी सम्बुद्धानन्द महाराज ने हम लोगों को एक बड़ी रोचक घटना बतायी थी। यह १९३६ ई., श्रीरामकृष्ण के जन्म-शताब्दी का वर्ष था। संघ ने उस वर्ष श्रीरामकृष्ण की जन्म-तिथि को व्यापक स्तर पर मनाने का निर्णय लिया। संघाध्यक्ष स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज से श्रीरामकृष्ण के बारे में लेख लिखने के लिए अनुरोध किया गया था, जिसका प्रचार संघ के केन्द्रों द्वारा सम्पूर्ण विश्व में किया जायेगा। लेकिन स्वामी अखण्डानन्द जी ने कहा, ''श्रीरामकृष्ण स्वयं ईश्वरस्वरूप हैं। वे जन्म-मृत्यु के परे हैं। उनकी भला शताब्दी कैसी? मैं कुछ भी नहीं लिखूँगा।'' स्वामी सम्बुद्धानन्द महाराज शताब्दी समारोह समिति के सचिव थे। उन्होंने विभिन्न प्रकार से स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज को लेख लिखने के लिए सहमत करने का प्रयास किया, लेकिन अखण्डानन्द जी किसी प्रकार सहमत नहीं हुये।

तदनन्तर सम्बुद्धानन्द महाराज स्वामी शुद्धानन्द जी से परामर्श लेने के लिए गये। शुद्धानन्द महाराज ने कहा, ''जब स्वामी अखण्डानन्द जी लेख लिखना नहीं चाहते, तो स्वामी विवेकानन्द जी ने अपने व्याख्यानों में श्रीरामकृष्ण के विषय में जो विचार दिए हैं, यदि उनका संकलन कर एकत्र किया जाय, तो वह श्रीरामकृष्ण के सम्बन्ध में एक अच्छा निबन्ध हो जायेगा।'' तत्पश्चात् स्वामी शुद्धानन्द महाराज ने अपनी स्मृति से विवेकानन्द साहित्य (उस समय आठ खण्डों में) में जहाँ वैसे विचार थे, उसकी पृष्ठ संख्या, अनुच्छेद और खण्ड-संख्या बता दी। इस विवरण के लेखक स्वामी सम्बुद्धानन्द जी स्वामी शुद्धानन्द जी की इस विलक्षण स्मृति शक्ति से विस्मित थे। तथापि इस लेख का उपयोग नहीं किया गया, क्योंकि स्वामी अखण्डानन्द महाराज ने बाद में अपने मनोभाव बदल दिया और श्रीरामकृष्ण के विषय में एक लेख लिखा।

अब मैं स्वामी शुद्धानन्द महाराज के विलक्षण व्यक्तित्व के एक भिन्न पक्ष को व्यक्त करनेवाली एक दूसरी घटना से कहानी समाप्त करना चाहूँगा। कोई भी सच्चा आध्यात्मिक साधक जानता है कि अच्छी तरह से ध्यान करना कितना कठिन है। जब तक मन कुछ मात्रा तक नियन्त्रित नहीं हो जाता और निश्चित स्तर तक पवित्र नहीं हो जाता, तब तक उचित रीति से ध्यान करना असम्भव होता है। ईश्वर का नाम-जप, नियमित शास्त्र-अध्ययन इत्यादि मन को ठीक से ध्यान करने में सक्षम बनाते हैं। जब ध्यान परिपक्व हो जाता है, तब समाधि होती है। **(क्रमश:)**

मानस के सुन्दरकाण्ड में भक्ति-तत्त्व

डॉ. महात्मा सिंह, कोलकाता

भज् धातु में तिङ प्रत्यय का योग करने पर भक्ति शब्द निष्पन्न होता है। इस भज् धातु के अनेक अर्थ स्वीकृत हैं, जैसे सेवा, अनुराग विशेष,[१] आराधना, भजन, विश्वास, उपचार, आश्रित होना, आराध्य देवता का नाम जपना तथा उसका पुनः पुनः स्मरण और ध्यान करना।[२] इस भाँति स्वयं को अपने आराध्य देवता का आश्रित समझ कर पूर्ण विश्वास और अगाध प्रेम के साथ उनका स्मरण और ध्यान करना ही भक्ति का व्युत्पत्तिपरक अर्थ है। शास्त्रों में कहीं भक्ति को ईश्वर में अतिशय अनुरक्ति[३] कहा गया है, तो कहीं उसे ईश्वर के प्रति परम प्रेमरूपा[४] माना गया है। कहीं पंडितों द्वारा स्नेहपूर्वक परमात्मा में ध्यान लगाने[५] को, तो कहीं अनन्य भाव से परमात्मा की सेवा[६] को ही भक्ति की संज्ञा दी गई है। ईश्वर के नाम, गुण, प्रभाव और रहस्य के श्रवण, कीर्तन, मनन, ध्यान और पठन-पाठन का श्रद्धापूर्वक निष्काम भाव से निरन्तर अभ्यास करना ही कुछ लोगों की दृष्टि में भक्ति का स्वरूप है,[७] तो भागवतकार ७.७५५ कहते हैं – **'एकान्तभक्ति गोविन्दे यत् सर्वत्र तदीक्षणम्'** अर्थात् सर्वदा सर्वत्र सब वस्तुओं में भगवान का दर्शन ही भक्ति है। गोस्वामी तुलसीदास की दृष्टि में राम के चरणों में राग-रिस रहित नीति समर्थित प्रीति ही भक्ति है[८]।

भक्ति निर्गुण-निराकार की नहीं, सगुण साकार के प्रति निवेदित होती है। सगुण-निराकार के प्रति भी मध्ययुगीन काव्यों में अगाध अनुरक्ति के दर्शन होते हैं, परन्तु भक्तिमार्गी कवियों ने शील, सौन्दर्य और भक्ति की विभूतियों से युक्त सगुण-साकार श्रीराम और श्रीकृष्ण को अपनी भक्ति के आलम्बन के रूप में स्वीकारा। गोस्वामीजी ने भी गीताकार[९] की इस मान्यता को स्वीकृति देते हुए कि जब-जब धर्म की हानि होती है और पृथ्वी पर अशिव तत्त्वों की वृद्धि होती है, तब-तब परम ब्रह्म परमेश्वर मायावपु धारण कर इस धरा पर अवतीर्ण होते हैं।[१०] गोस्वामीजी ने स्वामी रामानन्द द्वारा परमेश्वर रूप में प्रतिष्ठित एक दाशरथि राम को ही मानस का प्रतिपाद्य बनाया।[११]

एकाक्षर कोश में 'र' का अर्थ पावक, अ का विष्णु, वायु, इन्द्र, कुबेर, अमृत, कीर्ति और सरस्वती, 'म' का शिव, चन्द्रमा, ब्रह्मा, यम, मधु और सूर्य बतलाया गया है। इस भाँति इन तीन अक्षरों (र+अ+म) से बना हुआ शब्द राम, उपर्युक्त समस्त विभूतियों का वाचक है। सीता शब्द क्रमशः षुड् प्राणिप्रसवे (सूयते चराचरं जगत् इति सीता), षु प्रसवैश्वर्ययो (सुवति इति सीता षोन्तः कर्मनि (स्याति इति सीता), षू प्रेरने (सुवति इति सीता), षि बन्धने (सिनोति इति सीता), से निष्पन्न हो उद्भव, स्थिति, संहार, क्लेशहरण, सर्वमंगल, प्रिय बंधन (वल्लभत्व) आदि का बोधक है।[१२] कृशानु भानु, हिमकरादि अर्थात् सम्पूर्ण अग-जग[१३] के हेतु श्रीराम उद्भव, स्थिति, संहारकारिणी क्लेशहारिणी सर्व श्रेयस्करी[१४] चिद्रूपा ब्राह्मी शक्ति[१५] सीता के साथ अवतीर्ण हो, भक्ति का आलम्बन बन जाते हैं। इनकी भक्ति अनादि, अनन्त, अखण्ड, अछेद्य, अभेद्य, शाश्वत और सनातन ब्रह्म की ही भक्ति है।

ज्ञान और कर्म की महत्ता स्वीकारते हुए भी गोस्वामीजी ने सर्वग्राहकता की दृष्टि से भक्ति (उपासना) को श्रेष्ठ माना है।[१६] उनके मतानुसार जागतिक राग-रिस का प्रभाव ज्ञान-दीपक के लिए संकट की स्थिति उत्पन्न कर देता है, किन्तु वही भक्ति मणि द्वारा स्वयं विजित हो जाती है। ज्ञान की साधना अपेक्षाकृत अधिक श्रमसाध्य है और उसमें खतरे का भय भी बना रहता है,[१७] किन्तु सुरसरि सरीखी भक्ति में ये सारी बातें नहीं हैं। यह हमारे चरम लक्ष्य (ब्रह्म) की प्राप्ति का सबसे सरल और स्वाभाविक मार्ग है।[१९] भक्ति से सर्वथा पृथक् ज्ञान की साधना भी सम्भव नहीं है।[२०] भक्ति का उदय होने से पूर्णज्ञान अयाचित ही प्राप्त हो जाता है और इसी भाँति पूर्ण ज्ञान के साथ पूर्ण भक्ति भी स्वयं आ जाती है। इसीलिये देवर्षि नारद भक्ति को धर्म, ज्ञान तथा योग से भी श्रेष्ठ बतलाते हैं।[२१]

श्रीरूप गोस्वामी ने भक्ति को साधनरूपा तथा साध्यरूपा माना है। उन्होंने साधनरूपा भक्ति को वैधी भक्ति और रागानुगा भक्ति कहा है।[२२] एक अन्य दृष्टि से साधनरूपा भक्ति के चार प्रकार स्वीकृत हैं –

१. तामसी भक्ति २. राजसी भक्ति ३. सात्त्विकी भक्ति तथा ४ निर्गुण भक्ति।

श्री प्रियादास जी 'भक्तमाल' की भूमिका में भक्ति के पाँच भेद मानते हैं – १. शान्त भक्ति २. दास्य भक्ति ३. सख्य

भक्ति, ४. वात्सल्य भक्ति तथा शृंगार भक्ति। स्वयं बाबा तुलसीदास जी ने भक्ति के नौ प्रकार माने हैं[२३] –

१. सत्संग २. रामकथा में रति ३. गुरु सेवा ४. निश्चल भाव से श्रीराम का गुण-गान ५. दृढ़ विश्वास के साथ राम मंत्र का जप ६. इन्द्रिय-दमन, बहु कर्मों से विरति तथा निरन्तर सज्जन धर्म का पालन ७. सम्पूर्ण संसार को राममय देखना ८. यथालाभ संतोष तथा परदोष-दर्शन का परिहार और ९. सरल चित्त होना और श्रीराम पर दृढ़ विश्वास रखना।

भक्ति के इन सारे प्रकारों में से अन्यान्य तत्त्वों के साधु नवधा भक्ति को आत्मसात् करते हुए दास्य भक्ति को ही गोस्वामीजी ने अंगीकार किया है। अन्य साधनों में अहंकार के उद्दीपन की पूरी सम्भावना रहती है, किन्तु भक्ति की सेवक-सेव्य भावसाधना (दास्य भक्ति) में अहंकार का सर्वथा विसर्जन हो जाता है। इसलिए यह सेवक-सेव्य भावरूपा भक्ति ही इनकी दृष्टि में सर्वोपरि है।[२४] गोस्वामीजी की अभीप्सित भक्ति साधनरूपा नहीं, साध्यरूपा है।[२५]

अभीष्ट सोपान में हमें भक्ति के दोनों रूपों के दर्शन होते हैं। श्रीहनुमानजी, जिनके भाव प्रकारान्तर से हमारे कवि के ही भाव हैं, की भक्ति साध्यरूपा है तथा विभीषण और सुग्रीव की भक्ति साध्यरूपा है। दूसरी दृष्टि से हनुमानजी की कर्तव्य-भावना से की गई भक्ति सात्त्विकी, सुग्रीव और विभीषण की भौतिक वैभव की उपलब्धि हेतु की गई भक्ति राजसी तथा पर-पीड़न हेतु रावण द्वारा की गई शिव की भक्ति तामसी के अन्तर्गत स्वीकृत है। भक्तों के भी चार प्रकार माने गए हैं[२६] – १. अर्थार्थी, २. आर्त्त, ३. जिज्ञासु और ४. ज्ञानी । इनमें ज्ञानी को सर्वश्रेष्ठ माना गया है।[२७] यहाँ हनुमानजी ज्ञानी भक्त हैं, सुग्रीव (पूर्वापर चरित्रों को देखने पर) तथा विभीषण आरम्भ में आर्त्त और अनन्तोगत्वा अर्थार्थी भक्त बन जाते हैं। लक्ष्मणजी को ज्ञानी (निष्काम) भक्त की श्रेणी में न्यस्त किया जाना चाहिए। ❍❍❍

सन्दर्भ सूत्र – १. हलायुध कोश, पृ. ४८७, २. संक्षिप्त हिन्दी शब्दसागर ५वाँ संस्करण, पृ.८७६, ३. सा परानुरक्तिरीश्वरे, शाण्डिल्य भक्तिसूत्र १/२, ४. सा तस्मिन् परमप्रेम रूपा - नारद भक्तिसूत्र-३, ५. स्नेहपूर्वमनुध्यानं भक्तिरित्युच्यते बुधैः।- गीता, रामानुज भाष्य,

६. उपाधि विमुक्तमनेकभेदकं,
भक्तिः समुक्ता परमात्मसेवनम्।
अनन्यभावेन नियम्य मानसं,
महर्षिमुख्यर्भगवत्परत्वतः।। – स्वामी रामानन्द श्रीवैष्णवमतावज भास्कर, श्लोक-६५। ७. श्रीमद्भगवद्गीता, साधारण भाषाटीका ११/५५,

८. प्रीति राम सो नीतिपथ चलिय रागरिस जीति।
तुलसी संतन के मतै इहै भगति की रीति।। दोहावली ८६,
९. यदा-यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।। ४/७-गीता,
१०. जब-जब होंहि धर्म की हानी।
बाढहिं असुर अधम अभिमानी।।
तब-तब प्रभु धरि मनुज सरीरा।
हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा।। रा.च.मा.,

११. प्रभु प्रतिपाद्य राम भगवाना, मानस, १२. पंडित ध्रुवदास परिव्राजक प्रणीत 'स्तोत्ररत्नम्' का विवेक भाष्य, पृ.५

१३. वन्दौ चरन कमल रघुवर के।
हेतु कृसानु भानु हिमकर के।। – रा.च.मा.,

१४. उद्भवस्थिति-संहारकारिणी क्लेशहारिणीम्। सर्वश्रेयस्करी सीतां नतोऽहंरामवल्लभाम्।। - मानस, प्रथम सोपानस्तुति, ५वाँ श्लोक, १५. रामोपनिषद तथा तारसारोपनिषद, १६. रामभगति जहँ सुरसरि धारा। सरसइ ब्रह्म बिचार प्रचारा।। बिधि निषेधमय कलिमय हरनी। करम कथा रबिनन्दनी बरनी।।-मानस १/१/४-५, १७. गीता १२/५, १८. ज्ञानपथ कृपान कै धारा। परत खगेस होई नहि बारा।।-मानस, १९. हरिभक्तिं बिना कर्म न स्याद्धि शुद्धिकारणम्। न वा सिद्ध्येत विवेकादि न ज्ञानं नापि मुक्तता।। २०. विवेकानन्द भक्तियोग, पृ. ४-६, २१. नारद भक्ति सूत्र, चतुर्थ अनुवाक्, २२. श्रीहरिभक्तिरसामृतसिन्धु, प्रथम लहरी, पूर्व विभाग, श्लोक १३, २३. मानस-३/३४/४, ३/३५/३, २४. सेवक सेव्य भाव बिना, भव न तरिअ उरगारि। मानस, २५. नान्या स्पृहा रघुपते हृदयेऽस्मदीये, सत्यं वदामि च भवानखिलान्तरात्मा। भक्तिं प्रयच्छ रघुपुंगव निर्भरां मे, कामादि दोषरहितं कुरु मानसं च।। मानस, सुन्दरकाण्ड, स्तुति श्लोक, २६. गीता, ६/१६, २७. गीता ६/१७

पीठ पीछे किसी की निन्दा करना पाप है। इससे पूरी तरह बचकर रहना चाहिए। मन में कई बातें आती हैं, परन्तु उन्हें प्रगट करने से तिल का ताड़ बन जाता है। यदि क्षमा कर दो और भूल जाओ, तो उन बातों का अन्त हो जाता है।

– स्वामी विवेकानन्द

श्रीमत्सुरेश्वराचार्यविरचिता

नैष्कर्म्यसिद्धिः

व्याख्याकार : स्वामी धीरेशानन्द, सम्पादन : स्वामी ब्रह्मेशानन्द

ज्ञान को स्वीकार करने पर ज्ञान-कर्म समुच्चय का पक्ष उपस्थित होता है। समुच्चय तीन प्रकार का हो सकता है।

१. अंग – ज्ञान कर्म का अंग है २. अंगी – ज्ञान कर्म का अंगी है ३. समप्रधान – दोनों का बराबर महत्त्व है।

मीमांसकों के मत से ज्ञान-समुच्चयात्मक-कर्म को मोक्षसाधन स्वीकार किया जा सकता है, पर मोक्ष कर्म से ही होता है॥९॥ अत: सभी आश्रमवासियों को काय, मन और वचन के कर्मों का यथाशक्ति अनुष्ठान करना चाहिए।

वाक्कर्म – सत्यं मितं हितं निर्दोषभाषणादि, वेदाध्ययन, वाक्कर्म कहे जाते हैं। मनोकर्म – प्रसादभाव, मन: शुद्धि, मानसिक कर्म हैं। कायकर्म – शौचाचारादि, बहि:शौच – स्नानादि, अन्त:शौच - पूजादि शरीर-कर्म हैं। आचार – नित्य-नैमित्तिक, प्रायश्चित्तादि कर्म।

२२वें श्लोक से पूर्वपक्ष खंडन तथा सिद्धान्त स्थापन

पहले पूर्वपक्षी के पक्ष में दूषण की संभावना को दिखाने के लिए उपहास करते हैं। उसके बाद २३वें श्लोक में यह कहते हैं कि न्याययुक्त युक्तियों द्वारा इनके दोष दिखायेंगे, और इसी में तत्त्वनिर्णय रूप वाद भी सिद्ध हो जायेगा। विचार तीन प्रकार के होते हैं –

१. वाद : तत्त्वनिर्णय, सिद्धान्त स्थापन। यह उत्कृष्टतम है। २. जल्प : स्वपक्ष स्थापन, परपक्ष खंडन। ३. वितण्डा : परपक्ष खंडन मात्र। यहाँ खंडन होते हुए भी तत्त्वनिर्णय होगा।

मीमांसकों के मत (कर्मकाण्ड) की मुख्य बातें

१. कर्म द्वारा मुक्ति, ज्ञान द्वारा नहीं २. काम्य-प्रतिषिद्ध कर्म का त्याग, नित्य नैमित्तिक कर्मों का यावज्जीवन अनुष्ठान करना चाहिए। ३. 'एक भविक वाद'– एक जन्म में मुक्ति। ४. 'संचित कर्म'- स्वीकार नहीं करते। ५. कैवल्य देहपात के उत्तर काल में संभव है। मुक्ति अदृष्ट-फलक है, दृष्टफल नहीं। जीवन्मुक्ति केवल परिभाषा मात्र है, यथार्थ नहीं। ६. श्रुति-स्मृति सभी-शास्त्र कर्मपरक या साध्य परक हैं, सिद्ध अथवा वस्तुपरक नहीं है । वेद में कर्म के अप्रतिपादक वाक्य निरर्थक हैं। ज्ञानपरक वाक्य केवल शुद्धादि के लिये हैं। वेद वाक्य क्रियापद प्रधान हैं। ७. ज्ञान-कर्म-समुच्चय से मोक्ष सम्भव है, पर इसमें भी कर्म प्रधान है।

कर्मवाद खंडन की योजना

१. यज्ञ में लगे मीमांसकों का उपहास - श्रुति - 'अग्निमुग्धो हैव धूमाक्तत: एव लोकं न प्रतिजानाति' 'प्लवा ह्येते अदृढा यज्ञरूपा:,'न तं विदाध य इमा जजान', 'अविद्यायामन्तरे वर्तमाना:', 'यामिमां पुष्पितां वाचं', इत्यादि। २. अज्ञाननिवृत्ति ज्ञान मात्र से सम्भव है, कर्म से नहीं (अ) कर्म से अज्ञान नाश नहीं हो सकता, क्योंकि कर्म का हेतु अज्ञान है। उदाहरणार्थ, तम-तम को दूर नहीं कर सकता। तम द्वारा उत्पन्न सर्प अन्धकार से दूर नहीं हो सकता। (ब) मोक्ष आत्मा का यथार्थ स्वरूप होने के कारण वह कर्म का फल नहीं हो सकता। कर्म के चार प्रकार के फल – उत्पाद्य, आप्य, संस्कार्य, विकार्य हैं। ये चारों आत्मा नहीं हैं। (स) श्रुतार्थापत्तिन्याय या अनुमान द्वारा दो प्रकार के अर्थापत्ति प्रमाण हैं – सृष्टार्थापत्ति, श्रुतार्थापत्ति।

सृष्टार्थापत्ति – ''देवदत्तो दिवा न भुङ्क्ते - पीनो भवति' अत: रात्रौ भुङ्क्ते ।'' श्रुतार्थापत्ति –'ज्ञानादेव हि कैवल्यं','ज्ञात्वादेवं मुच्यते सर्वपाशै:','त्वमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति'। इन श्रुतिवचनों की रक्षा के लिए जगत् को मिथ्या भ्रम स्वीकार करना होगा।

(द) कर्म द्वारा मुक्ति को अभ्युपगम (स्वीकार) करने पर दोष – (१) यदि एक कर्म से हो, तो अन्य कर्म वृथा हो जायेंगे। (२) यदि सभी कर्मों द्वारा हो, तो सब मिलकर एक कार्य पैदा करेंगे, तो यह श्रुति विरुद्ध है। क्योंकि प्रत्येक का भिन्न-भिन्न फल वर्णित है। यही नहीं प्रत्येक आश्रम के विहित कर्म भिन्न हैं। (३) नित्य-नैमित्तिक कर्मों के फलों का श्रुति में वर्णन न होने के कारण पारिशेष्य न्याय से मोक्षफल स्वीकार करने में दोष॥२६॥

(१) नित्य कर्मों को न करने का फल प्रत्यवाय (२) काम्यकर्म करने का फल पितृलोक स्वर्गादि। (३) नैमित्तिक कर्मों का फल पापनाश।

(फ) श्रुति में कोई प्रमाण नहीं कि कर्म मुक्ति देता है। पारलौकिक विषय में श्रुति ही प्रमाण है॥२७॥

(ब) निषिद्ध व काम्य कर्मों का त्याग तो वादी तथा सिद्धान्ती दोनों को स्वीकार है। नित्य कर्म का फल वर्णित नहीं है, अत: वह मोक्ष का साधन नहीं हो सकता॥२८॥

आधुनिक मानव शान्ति की खोज में (२२)

स्वामी निखिलेश्वरानन्द

अध्यक्ष, रामकृष्ण आश्रम, राजकोट

जो कुछ होता है, सब भगवान की इच्छा से होता है। भगवान मंगलमय हैं, सभी का मंगल करते हैं। उनकी इच्छा को मानकर विपत्ति को यदि स्वीकार कर लिया जाय, तो परिस्थिति दुखदायी नहीं रहती है। इस सन्दर्भ में श्रीरामकृष्ण देव की एक कहानी है। एक बुनकर था। वह राम का भक्त था। सब कुछ राम की इच्छा से होता है, यही मानकर वह चलता था। एक बार राम का भजन करते हुए अपने आँगन में बैठा था। तभी चोरी का माल लेकर चार चोर वहाँ आए। उनके माल का पोटला बहुत भारी था। इसलिये वे कोई मजदूर ढूँढ़ रहे थे। उन्होंने इस बुनकर को देखकर कहा, ''चल खड़े हो जा, इस पोटले को उठा और जहाँ हम कहेंगे, वहाँ रख देना।'' जैसी राम की इच्छा, कहकर वह खड़ा हो गया और पोटला उठाकर चोरों के साथ चलने लगा। इतने में चोरों को ढूँढ़ते हुए वहाँ पुलिस आ गई। चोर भाग गये और पोटले के साथ बुनकर पकड़ा गया। उसके पास चोरी का सारा सामान था, इसलिए उसे पकड़कर जेल में डाल दिया। लोगों को पता चला तो अफसोस करने लगे कि बेचारा ऐसा भोला-भाला राम का भक्त, वह कभी चोरी करेगा, हो ही नहीं सकता, उसे जेल में क्यों डाल दिया? कोर्ट में केस चला। न्यायाधीश ने उससे पूछा, ''क्या हुआ था, सच-सच कहो?'' तब उसने कहा, ''माननीय, राम की इच्छा से मैं अपने घर में बैठा हुआ राम का नाम ले रहा था। वहाँ राम की इच्छा से चार आदमी पोटला उठाकर आए। राम की इच्छा से उन्होंने मुझे पोटला उठाने को कहा। राम की इच्छा से मैं पोटला उठाकर उनके साथ चलने लगा। राम की इच्छा से वहाँ पुलिस आ गई और वे चारों चोर भाग गये और मैं राम की इच्छा से पकड़ा गया। राम की इच्छा से मुझे जेल में बंद कर दिया और अब मैं राम की इच्छा से आपके सामने खड़ा हूँ।'' न्यायाधीश ने देखा कि यह तो सच में राम का भक्त है, यह कभी चोरी नहीं करेगा। इसलिए उसे छोड़ दिया, तब उस भक्त ने कहा, ''हुजूर राम की इच्छा से अब मैं छूट गया।'' इस प्रकार सुख में या दुख में, किसी भी परिस्थिति में भगवान की इच्छा ही देखी जाय, तो मन कभी विचलित नहीं होता है, प्रत्येक स्थिति में मनुष्य स्वस्थ और शान्त रह सकता है।

भगवान जो भी करते हैं, मंगलमय ही करते हैं, हमारे भले के लिये ही करते हैं, यह विश्वास मन में दृढ़ हो जाय, तो दुख, विपत्ति भी कृपा और आशीर्वाद में बदल जाते हैं। इस सन्दर्भ में एक राजा और मंत्री की कहानी है। एक दिन तलवार की धार जाँचते समय राजा की अंगुली कट गई, तब मंत्री बोल पड़ा, ''भगवान जो कुछ करते हैं, अच्छे के लिए करते हैं।'' ''मेरी अंगुली कट गई, इसमें क्या अच्छा हुआ?'' क्रोधित होकर राजा ने उसे जेल में डाल दिया। एक दिन शिकार की खोज में वह अपने सैनिकों से आगे निकल गया। वहीं कुछ तांत्रिकों ने उसे पकड़ लिया और अपने अड्डे पर ले गये। वहाँ यज्ञ चल रहा था। इस यज्ञ में नर-बलि देनी थी, इसलिए राजा को पकड़ लिया था। राजा सभी प्रकार से बलि देने के योग्य था, लेकिन अंगुली कटी हुई होने से, खंडित अंग वाला जानकर छोड़ दिया गया। तब राजा को मंत्री के शब्द याद आए, 'भगवान जो भी करते हैं, अच्छे के लिये ही करते हैं।' उसे लगा कि भगवान ने मेरी अंगुली काट कर मेरे बचाने की व्यवस्था पहले ही कर दी थी। वह राजमहल में लौटा, तुरन्त मंत्री के पास गया। उसे जेल से मुक्त कर सारी बात बताई और पूछा, ''मेरी अंगुली कटी, तो मेरे लिए अच्छा हुआ, पर तुम्हें जेल में डालकर भगवान ने तुम्हारा क्या भला किया?'' ''अजी, महाराज, भगवान बहुत दयालु हैं। मुझे जेल में डालकर मुझे भी बचा लिया। यदि मैं जेल में नहीं होता, तो आपके साथ होता। आप छूट जाते और मेरी नर-बलि दे दी गई होती। अब समझ में आया कि भगवान जो कुछ करते हैं, अच्छे के लिए करते हैं।'' इस अनुभव से राजा को यह बात अच्छी तरह समझ में आ गई। इसलिए भगवान हमें जैसी भी परिस्थिति में डालते हैं, वह हमारे भले के लिए ही होती है। इस प्रकार परिस्थिति को स्वीकार करने से दुख के पहाड़ अदृश्य हो जाते हैं और कृपा का महासागर हिलोरें लेने लगता है।

क्रोध रूपी चांडाल मस्तक पर सवार हो तब...

क्रोध जब मस्तक पर सवार होता है, तब मनुष्य की आन्तरिक स्थिति ही नहीं, बाह्य स्वरूप भी बदल जाता है। लाल आँखें, तंग चेहरा, धौंकनी की तरह चलती साँसें,

हाथ की मुट्ठी जोर-जोर से पटकना, मुँह से निकलने वाले बन्दूक की गोली जैसे शब्द, यह है क्रोध के आगमन से होने वाली बाह्य स्थिति। मन में विचारों का प्रचंड वेग, उग्रता, विवेकहीनता, सद्भावना का लोप, यह है क्रोध में आन्तरिक स्थिति। इसलिये गीता में श्रीकृष्ण ने काम, क्रोध, लोभ को नरक का द्वार कहा है। ऐसा क्रोध जब मस्तक पर अधिकार कर ले, तब क्या करें?

श्रीरामकृष्ण देव के अन्तरंग शिष्य निरंजन एक बार नाव में बैठकर दक्षिणेश्वर जा रहे थे। नाव में बैठे हुए लोग श्रीरामकृष्ण की निन्दा करने लगे। प्रारम्भ में निरंजन ने विरोध करके निन्दा बन्द करने का प्रयत्न किया, परन्तु वे लोग किसी भी तरह चुप नहीं हो रहे थे, इसलिए निरंजन को क्रोध आ गया। बलिष्ठ शरीर और उग्र स्वभाव के निरंजन ने उन लोगों से कहा, ''मेरे गुरु की निन्दा करते हो। अब मैं इस पूरी नाव को ही डुबो देता हूँ।'' उनके क्रोध को देखकर सभी काँप उठे। सबने अनुनय-विनय करके ऐसा करने से उन्हें रोक लिया। बाद में श्रीरामकृष्ण देव को जब इस बात का पता चला, तब उन्होंने कहा, ''अरे निरंजन ! क्रोध चांडाल है, क्या उसके वश में होना चाहिए, सज्जनों का क्रोध तो पानी पर अंकित रेखा की तरह होता है, जो बनने के साथ-साथ मिटता भी जाता है। निम्न बुद्धिवाले लोग बेकार की बातें करते रहते हैं, यदि उनको लेकर वाद-विवाद करें, तब तो जीवन इसी में बीत जाएगा। ऐसे प्रसंगों में तू लोगों को कीड़ा जैसा समझकर उनकी बातों की उपेक्षा कर। क्रोध के वशीभूत होकर तू कितना बड़ा विपरीत कार्य करने को तत्पर हो गया था। जरा सोचो कि बिचारे नाविक ने तेरा क्या बिगाड़ा था कि तू उस गरीब पर अत्याचार करने को तैयार हो गया?'' अन्य लोगों के कटुवचन या कटाक्षों के कारण मन में यदि क्रोध आए, तब उन निम्न बुद्धिवाले लोगों की बातों की पूर्णत: उपेक्षा करने से क्रोध का चांडाल मस्तक पर सवार नहीं हो सकता है।

''अरे रे, देखता नहीं है, मैं गंगा स्नान करके आ रहा हूँ और तूने मुझे छू लिया? तेरा इतना साहस? चांडाल होकर ब्राह्मण के मार्ग में खड़ा है?'' प्रात:काल गंगा स्नान करके आ रहे एक ब्राह्मण से रास्ते में एक चांडाल टकरा गया, इसलिये उन्हें चांडाल पर क्रोध हो गया। मानो उस चांडाल ने महापाप किया हो, इस तरह डाँटने लगे, तब चांडाल ने हाथ जोड़कर कहा, ''भूदेव, मैं तो जाति से चांडाल हूँ। आप मेरे छूने से अस्पृश्य हो गये, लेकिन आप तो अस्पर्श्य हैं ही, इस क्रोध रूपी चांडाल को सिर पर लेकर घूम रहे हैं, वह क्या है?'' ब्राह्मण निरुत्तर हो गये। कई लोग इसी तरह क्रोध रूपी चांडाल को मस्तक पर लेकर घूमते हैं। अपेक्षित काम न हो, कोई विरोध करे, इच्छानुसार बात न हो, तो तुरन्त चांडाल जाग्रत हो जाता है और उससे अकरणीय कार्य करवा लेता है। फिर पश्चात्ताप के सिवाय कुछ हाथ नहीं लगता है।

जब भी मन में क्रोध आए, तब क्या करें? स्वामी विवेकानन्द ने 'राजयोग' में **'वितर्कबाधने प्रतिपक्षभावनम्'** पातंजल योगसूत्र की व्याख्या को समझाते हुए कहा है, जब योग के विरोधी भाव जगें, तब उसके प्रतिपक्षी विचारों का बार-बार चिन्तन करना चाहिए। स्वामी विवेकानन्द कहते हैं, ''जब मन में क्रोध की भीषण लहर आये, तब उसे कैसे वश में करना है? उसके विरोधी विचारों का सर्जन करके उसे वशीभूत कर सकते हैं। उस समय मन में प्रेम की बातें लाओ। कभी-कभी ऐसा होता है कि पत्नी अपने पति पर बहुत गरम हो जाती है, उसी समय उसका बालक वहाँ आ जाए, तो उसे गोद में लेकर चूम लेती है, इससे उसके मन में बालक के प्रति प्रेम का भाव उमड़ता है, यह प्रेम का आन्दोलन, पहले उठे क्रोध के आन्दोलन को दबा देता है। क्रोध के समय अपने गुरु, इष्टदेव या अपने अत्यन्त प्रिय व्यक्ति का स्मरण करने से भी क्रोध का आवेग कम हो जाता है अथवा उनके फोटो देखने से भी मन शान्त हो जाता है। दूसरा तात्कालिक उपाय है कि जब भी क्रोध आए, तब तुरन्त जिसमें श्रद्धा हो, उस पवित्र मंत्र का दस बार जप करने से भी क्रोध का वेग शान्त हो जाता है। मन्त्र-जप में मन को शान्त करने की अद्भुत शक्ति है। **(क्रमश:)**

यदि भगवान में तुम्हारा मन न लगे, तो तुम उनके नाम का जप कर मन लगा सकते हो। तुम स्वयं पानी में कूदो या कोई दूसरा तुम्हें धक्का देकर पानी में डुबो दे, दोनों ही स्थितियों में तुम्हारे कपड़े भीगेंगे ही। है न? जब तक मन कच्चा है, प्रतिदिन ध्यान करो। ध्यान के अभ्यास से मन एकाग्र हो जाएगा। सदैव सत्-असत् का विचार करते रहो और मन को ईश्वर में लगाए रखो।

– श्रीमाँ सारदा देवी

स्वामी विवेकानन्द के प्रिय गुडविन (४)

प्रव्राजिका व्रजप्राणा

(स्वामी विवेकानन्द की ग्रन्थावली का अधिकांश भाग गुडविन द्वारा लिपिबद्ध व्याख्यान-मालाएँ हैं। उनकी आकस्मिक मृत्यु पर स्वामीजी ने कहा था, ''गुडविन का ऋण मैं कभी चुका नहीं सकूँगा।... उसकी मृत्यु से मैं एक सच्चा मित्र, एक भक्तिमान शिष्य तथा एक अथक कर्मी खो बैठा हूँ। जगत् में ऐसे अति अल्प लोग ही जन्म लेते हैं, जो परोपकार के लिये जीते हैं। इस मृत्यु ने जगत् के ऐसे अल्पसंख्यक लोगों की संख्या एक और कम कर दी है।'' गुडविन के संक्षिप्त जीवन का अनुवाद पाठकों के लाभार्थ यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है। – सं.)

जिस महीने में उपरोक्त पत्र लिखे गए थे, उसी महीने न्यूयॉर्क शहर में स्वामीजी ने गुडविन को ब्रह्मचर्य व्रत में दीक्षित किया। एक नवयुवक, जो मात्र दो महीने पूर्व संसार से सन्तप्त और निराश होकर स्वामीजी के द्वार पर उपस्थित हुआ था, उसे नवीन जन्म प्राप्त हुआ।

स्वामीजी ने फरवरी के अन्तिम सप्ताह में श्रीरामकृष्ण देव की जन्मजयन्ती के दिन 'मेरे गुरुदेव' व्याख्यान दिया और इस प्रकार उनके न्यूयॉर्क का व्याख्यान-कार्यक्रम समाप्त हुआ। ३ मार्च को स्वामीजी और गुडविन डिट्राएट पहुँचे। सिस्टर क्रिस्टीन और श्रीमती मैरी फन्की ने उनके आवास हेतु रिचेल्यु होटल में दो कमरे और एक बड़े बैठकखाने की व्यवस्था की थी। श्रीमती फन्की अपने संस्मरण में कहती हैं, ''स्वामीजी अपने निष्ठावान स्टेनोग्राफर गुडविन के साथ आए थे। उन्होंने 'द रिचेल्यु' नामक एक छोटे पारिवारिक होटल में कमरे लिए थे। उनकी कक्षाओं और प्रवचन के लिए बड़ा बैठकखाना भी था, किन्तु यह इतना भी बड़ा नहीं था कि पूरी भीड़ इसमें समा जाए। हमें बड़ा खेद होता था कि स्थानाभाव के कारण अनेक लोगों को वापस जाना पड़ता था। कमरा, सभागृह, सीढ़ी और पुस्तकालय लोगों से ठसाठस भर जाते थे।''

स्वामीजी की इच्छा थी कि वे डिट्राएट में अपने दो सप्ताह शान्ति से व्यतीत करेंगे और प्रतिदिन कुछ समर्पित आध्यात्मिक जिज्ञासुओं के लिए दो कक्षाएँ लेंगे। किन्तु उनकी सारी योजनाएँ स्वामी कृपानन्द के आगमन से विफल हो गईं। कृपानन्द ने डिट्राएट के प्रमुख समाचार-पत्रों में स्वामीजी के आगमन की सूचना दे दी और अनजाने में स्वामीजी के समर्थकों और उनके विरोधी ईसाई मिशनरी के बीच समाचारपत्रों द्वारा विवाद आरम्भ करा दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि स्वामीजी जो अपनी कक्षाएँ चयनित जिज्ञासुओं के लिए रखना चाहते थे, वे मात्र कुतूहल दर्शकों से भर जाती थीं। इस सम्बन्ध में गुडविन ने श्रीमती ओली बुल को लिखा था, ''मुझे कहते हुए दुख हो रहा है कि यहाँ कुछ अधिक अव्यवस्था हो गई है। हम जब यहाँ पहुँचे, तो देखा कि समाचारपत्रों का विवाद बढ़ा हुआ है। स्वामीजी के विरुद्ध कुछ दोषारोपण किए गए थे और स्वामी कृपानन्द अविवेकपूर्वक उनका खण्डन कर रहे थे। परिणाम यह हुआ कि उनका आगमन एक सार्वजनिक कार्यक्रम हो गया। स्वामीजी अपनी कक्षाओं को सम्पूर्ण रूप से अपने मित्रों तक ही सीमित रखना चाहते थे, किन्तु वे सार्वजनिक प्रवचनों में परिणत हो गए। उनकी प्रथम कक्षा में तो मात्र उनके एक ही मित्र उपस्थित थे, बाकी पूरा कमरा अपरिचित लोगों से भर गया था। इस समस्या के हल के लिए ऐसा निर्णय लिया गया कि तीन सार्वजनिक कक्षाएँ रखी जाएँ और एक कक्षा केवल उनके जिज्ञासु मित्रों तक सीमित रहे। सबसे दुखद बात यह थी कि स्वामीजी अपनी कार्य-योजनाओं के निष्फल होने से काफी व्यथित हो गए, किन्तु पुन: व्यवस्थाओं में परिवर्तन से वे थोड़ा निश्चिन्त हो गए। मुझे आशा है कि फिर से ऐसी कोई बाधा उत्पन्न नहीं होगी और आश्वस्त करता हूँ कि इस विषय में उन महिलाओं के लिए जो कुछ सहायता सम्भव होगी, उसे करूँगा।''

कृपानन्द को लगा कि उन पर जो दोषारोपण किया गया है, वह अन्यायपूर्ण है और वे स्वयं को अपने गुरु द्वारा परित्यक्त समझने लगे। वास्तव में वे गुडविन की कार्यक्षमता और कुशलता पर ईर्ष्या कर रहे थे, क्योंकि गुडविन ने सहज ही वह स्थान ग्रहण कर लिया था, जो कभी उनका था। गुडविन के विषय में उन्होंने श्रीमती ओली बुल से शिकायत की थी, 'उनके (स्वामीजी के) नए प्रियपात्र के द्वारा मैं अपमानित हुआ हूँ और लोगों के बीच मुझे बुरी तरह से लज्जित होना पड़ा है।'' यद्यपि गुडविन भद्रतापूर्ण व्यवहार करते थे, किन्तु वे अत्यन्त मृदु भी नहीं थे। डिट्राएट की घटना के विषय में उन्होंने श्रीतमी ओली बुल को लिखा था, ''कृपानन्द के साथ मेरा झगड़ा न हो, इसका मैं ध्यान रख रहा हूँ, किन्तु तो भी एकबार मैं उस पर चिढ़ गया था और उस पर आत्म-प्रदर्शन का आरोप लगाया था।'' कृपानन्द ईर्ष्या से ग्रस्त होकर व्यथित होने लगे और स्वामीजी से भी उतनी ही उनकी दूरियाँ बढ़ती गईं। जैसे-जैसे स्वामीजी के कार्यों में कृपानन्द

का योगदान कम होने लगा, गुडविन स्वामीजी के लिए उतने ही अनिवार्य होते गए।

डिट्राएट की समस्या को सुलझाने के लिए स्वामीजी सार्वजनिक और कुछ चयनित लोगों – दोनों के लिए व्याख्यान देने लगे। उनके दोनों व्याख्यान प्रसिद्ध हुए और उनके सार्वजनिक व्याख्यानों को तो प्रचण्ड सफलता प्राप्त हुई। इन दिनों का स्मरण करते हुए गुडविन ने स्वामीजी से कहा था, ''हमारी सबसे बड़ी सभा डिट्राएट में हुई थी। लगभग ६००० लोग थे ! उस दिन आपके शब्द अलौकिक शक्ति के साथ प्रस्फुटित हुए थे। मैं तो आनन्द से पागल हो गया था।''

डिट्राएट से रेल द्वारा ७५० मील की यात्रा कर स्वामीजी और गुडविन बोस्टन पहुँचे। यहाँ उनका स्नेहपूर्वक स्वागत हुआ। वे श्रीमती ओली बुल के निमन्त्रण पर यहाँ आए थे। उन्होंने स्वामीजी के प्रवचन और कक्षाओं दोनों की व्यवस्था की थी। इसके अलावा बोस्टन में चयनित जिज्ञासुओं के लिए जो निजी कक्षाएँ होने वाली थीं, उसमें अधिकाधिक वृद्धि हुई। सभी लोग इस बात से निश्चिन्त थे कि इस बार स्वामीजी के आगमन पर कोई विवाद अथवा निरर्थक विज्ञापनबाजी नहीं हुई। स्वामीजी अपने सार्वजनिक और निजी कक्षाओं के बारे में मैरी फन्की को लिखते हैं, ''मैं बोस्टन में बहुत ही आनन्द का अनुभव कर रहा हूँ, केवल अत्यधिक परिश्रम करना पड़ रहा है...गतरात्रि को पाठवर्ग ५०० लोगों से भर गया था और मुझे आशंका है कि यह संख्या बढ़ती जाएगी। सब कुछ उत्कृष्ट रूप से चल रहा है। श्रीमान गुडविन हमेशा की तरह अच्छे हैं। हम सभी यहाँ मित्रवत् हैं।'' स्वामीजी के इस अन्तिम वाक्य से समझा जा सकता है कि डिट्राएट में ईर्ष्या और सन्देह से ग्रस्त वातावरण की तुलना में उनके बोस्टन के दिन कितने सुखपूर्वक थे।

बोस्टन के मित्रों में प्रोफेसर जॉन हेनरी राईट से पुन: मिलकर स्वामीजी विशेष आनन्दित हुए। स्वामीजी जब एक अज्ञात संन्यासी मात्र थे, तब उनकी प्रोफेसर जॉन हेनरी राईट से मित्रता हुई थी। उन्होंने ही स्वामीजी को धर्म-महासभा में प्रतिनिधि के रूप में परिचय-पत्र दिलाया था। प्रोफेसर राईट ने अपनी पत्नी को मार्च १८९६ में लिखा था, ''स्वामीजी को अपने व्याख्यानों में अद्भुत सफलता प्राप्त हो रही है। एक नवयुवक स्टेनोग्राफर (गुडविन) उनके उपदेशों के प्रेम में बँध गया है और भौतिकवाद से वेदान्तवाद में परिणत हो गया है। वह श्रद्धापूर्वक उनके प्रवचन लिपिबद्ध करता है और प्रत्येक नगर अथवा स्थान में उनके साथ रहता है।''

स्वामीजी का २५ मार्च को हावर्ड ग्रेजुएट फिलोसोफिकल क्लब में प्रदत्त व्याख्यान उनके अमेरिका में दिए गए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण व्याख्यानों में से एक था। इस प्रसिद्ध वक्तृता के विषय में मैरी लुईस बर्क लिखती हैं, ''इस संस्था में व्याख्यान का निमन्त्रण प्राप्त करना अर्थात् अमेरिकी बुद्धिजीवियों द्वारा सर्वोच्च सम्मान प्राप्त करना था..'' हावर्ड विभाग के लोग स्वामीजी से निस्सन्देह प्रभावित हो गए थे, क्योंकि बाद में उन्हें प्राच्य दर्शन की पीठ (चेअर ऑफ ईस्टर्न फिलोसोफी) का प्रस्ताव प्रस्तुत किया गया था। गुडविन ने स्वामीजी के 'वेदान्त दर्शन' व्याख्यान को शॉर्टहैन्ड में लिपिबद्ध कर टाईप किया, जिसे पुस्तिका के रूप में प्रकाशित किया गया।

स्वामीजी के अमेरिकी प्रवास का अन्तिम सार्वजनिक व्याख्यान बोस्टन के ट्वन्टिएथ सेन्चुरी क्लब में हुआ। उनका व्याख्यान 'वेदान्त का व्यावहारिक पक्ष और अन्यान्य दर्शनों के साथ इसका पार्थक्य' को भी गुडविन ने शॉर्टहैन्ड में लिपिबद्ध किया, जिसे ट्वन्टिएथ सेन्चुरी क्लब के द्वारा पुस्तिका के रूप में प्रकाशित किया गया।

स्वामीजी और गुडविन के लिए बोस्टन का आकर्षण-केन्द्र श्रीमती ओली बुल थीं, जिनके प्रति दोनों का अत्यन्त आदर था। श्रीमती ओली बुल की कार्यक्षमता पर स्वामीजी को इतना विश्वास था कि अपनी अनुपस्थिति में उन्होंने अमेरिका का कार्यभार उनके ऊपर सौंपा था। अमेरिका छोड़ने के पूर्व स्वामीजी ने श्रीमती ओली बुल को लिखा था, ''मैं कल समुद्री जहाज से रवाना होऊँगा...इस दौरान मैं सब कुछ आपके भरोसे छोड़ता हूँ।'' इसके कई सप्ताह बाद स्वामीजी और गुडविन ने अपने अमेरिकी कार्य और उसमें श्रीमती ओली बुल के विशेष योगदान की चर्चा की थी। इस संवाद के विषय में गुडविन ने ओली बुल को लिखा था, ''मैंने अवसर देखकर... उनसे पूछा कि अमेरिका में वेदान्त-प्रचार के कार्यों में आपके नेतृत्व के बारे में वे क्या सोचते हैं? उनका उत्तर था कि वे आपको एक उत्कृष्ट निर्णय-क्षमता वाली नारी के रूप में देखते हैं और जिस प्रकार आपके हाथों कार्यभार देकर वे निश्चिन्त हैं, उतना अन्य किसी के विषय में नहीं हो सकते थे।''

मार्च ३० को स्वामीजी जब बोस्टन से शिकागो के लिए रवाना हुए, तब गुडविन श्रीमती ओली बुल के साथ दस दिन अधिक रहे। इस दरम्यान उनका परिचय प्रगाढ़ आत्मीयता में परिणत हुआ। स्वामीजी और पाश्चात्य कार्य के प्रति उनके विचारों में एकमत स्थापित हुआ और भविष्य में वेदान्त भावधारा के अनेक क्षेत्रों में वे समान्तर रूप से कार्य करने वाले थे। **(क्रमशः)**

भक्त और मान-अपमान

स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती

भक्त के लिये मान-अपमान कुछ है ही नहीं। जो बात सामान्य लोगों को अपमानजनक लगती है, वही बात यदि कोई अपना प्रिय व्यक्ति कहे, तो सम्मानजनक बन जाती है। अपना प्रियतम जो कुछ कहता है, उसमें सम्मान का ही बोध होता है। मैं एक मित्र के यहाँ भोजन करने गया था। वहाँ उनके एक मित्र आये थे। उनके लिए भोजन में जो 'बड़ा' परोसा गया, तोड़ने पर उसमें से रूई निकली। यह देखकर सब लोग हँसने लगे। वे भी खूब हँसे, क्योंकि वह रूई तो उनके मित्र ने जानबूझकर उनके 'बड़े' में भरी थी। इसमें अपमान मानकर भला वे क्यों रुष्ट होते।

संसार में मनुष्य को कभी मान मिलता है, कभी अपमान मिलता है। मान का अर्थ है माप। लम्बाई को, देश को गज, फीट आदि से मापा जाता है। समय को सेकण्ड, मिनट, घण्टे, दिन आदि से मापते हैं। वस्तु को मन, सेर, छटाँक में मापते हैं। इस प्रकार 'मान' का अर्थ है – परिच्छिन्नता, घेरा। जब हम अपने को परिच्छिन्न करके एक घेरे में बाँध लेते हैं, तब यह मान हमारे साथ जुड़ता है और जहाँ मान जुड़ता है, वहाँ अपमान भी जुड़ता है। देह में आत्मबुद्धि हुए बिना मान-अपमान नहीं होता। भक्त को कैसे रहना चाहिए, इस पर प्रबोधानन्द सरस्वती जी कहते हैं –

भ्रातस्तिष्ठ तले तले विटपिनां ग्रामेषु भिक्षामट,
स्वच्छन्दं पिब यामुनं जलमलं चीराणि कन्थां कुरु।
सम्मानं कलयातिघोरगरलं नीचापमानं सुधां
श्रीराधामुरलीधरौ भज सखे वृन्दावनं मा त्यज।।

''भाई, श्रीराधा-माधव का भजन करते हुए वृन्दावन-वास करो। वृन्दावन त्यागकर कहीं अन्यत्र मत जाओ; किन्तु वहाँ कहीं कुटिया या भवन मत बनाने लगना। एक वृक्ष के नीचे रहने लगोगे, तो उस स्थान से आसक्ति हो जायेगी। भोजन के लिए ब्रजवासियों के घर से भिक्षा माँग लेना और प्यास लगे, तो जी भरकर श्रीयमुना-जल पीना। मार्ग में पड़े चिथड़ों से शरीर ढकने को गुदड़ी बना लेना। सबसे ध्यान देने की बात यह है कि सम्मान को अत्यन्त भयंकर विष समझकर उससे सावधानीपूर्वक बचना और तुमसे छोटे लोग तुम्हारा अपमान करें, तो उसे अपने लिये अमृत मानना।''

संसारी लोग सिर पर मानापमान का भार लेकर चलते हैं। जिसको श्रेष्ठता का अभिमान इतना बड़ा हो कि उसे हर बात में सर्वत्र अपमान ही लगे, वह पामर पुरुष है। जिसे प्रत्येक स्थान में कहाँ सम्मान और कहाँ अपमान प्रतीत हो, वह विषयी है। साधक विषयी से उलटे स्वभाव का होता है। वह अपमान को सम्मान तथा सम्मान को अपमान मानता है। मनुस्मृति में कहा है –

सम्मानाद् ब्राह्मणो नित्यं उद्विजेत विषादिव।
अमृतस्येव चाकांक्षेदवमानस्य सर्वदा।।

''ब्राह्मण को चाहिए कि वह सम्मान से उसी प्रकार डरे, जैसे मनुष्य विष से डरता है। जहाँ सम्मान होता हो, वहाँ बार-बार न जाये। लेकिन अमृत की भाँति अपमान की आकांक्षा करे। जहाँ अपमान होता हो, वहाँ बार-बार जाये।'' क्योंकि सम्मान देहाभिमान को दृढ़ करता है और अपमान उसे काटता है। अत: जो परमार्थ के मार्ग में चलना चाहता है, उसे सम्मान से बचना और अपमान का स्वागत करना चाहिए, कहा गया है –

अपमानात्तपोवृद्धिः सम्मानात्तपसः क्षयः।

– अपमान से तपस्या बढ़ती है, सहनशीलता आती है और सम्मान से तपस्या का ह्रास होता है, अहंकार बढ़ता है।

एक बार मैं यात्रा कर रहा था। ट्रेन में जिस डिब्बे में चढ़ा, उसमें सीटों पर पेशावरी पठान सोये थे। मैं एक पठान के पैरों के पास बैठ गया, तो उसने मुझे बार-बार पैर से मारा। कहता था, 'गाँधी का चेला लगता है।' मैं काँग्रेस में तो था ही, चुप रहा, किन्तु मन में बहुत दुख हुआ। यात्रा के बाद एक महात्मा के पास जाकर मैंने अपने मन का दुख सुनाया, तो वे बोले, ''जब तुम्हारा अपमान होता है, तब तुम ऐसे स्थान पर बैठे रहते हो, जहाँ तुम्हारा अपमान किया जाय। जो नाली में पड़ा है, उसके ऊपर गंदा पानी तो गिरेगा ही। जो कूड़े के ढेर पर बैठा है, उसके सिर पर कोई ऊपर से कूड़े की टोकरी उलटता है, तो कूड़ा उलटने वाले का क्या दोष है? कूड़े के ढेर पर तो तुम स्वयं बैठे हो। इस हड्डी, माँस, रक्त, चर्म, मल-मूत्र की राशि – शरीर से राग करके जब तुम देह में बैठते हो, जब देह को 'मैं' मान लेते हो, तब तुम्हारा अपमान होता है। यह तो ईश्वर की कृपा है कि अपमान आता है। अपमान कहता है कि देह से ऊपर उठो ! इस नाली में, इस कूड़े के ढेर पर मत बैठो। तुम्हारे पिता का घर कितना निर्मल, कितना मनोरम है। वहाँ चलो, कूड़े पर क्यों बैठे हो? अत: अपमान करने वाला तो तुम्हारा हितैषी ही है।'' ○○○

(साभार : पृ. २८३, भक्तियोग, स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती)

समाचार और सूचनाएँ

विवेकानन्द जयन्ती समारोह, रायपुर

स्वामी विवेकानन्द जी की १५५वीं जयन्ती के उपलक्ष्य में रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर द्वारा आयोजित विभिन्न कार्यक्रमों का संक्षिप्त विवरण –

स्वामी विवेकानन्द की जयन्ती मनाई गई

८ जनवरी, २०१८, सोमवार को रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर में स्वामी विवेकानन्द जी की १५५वीं जन्म-तिथि पूजा आयोजित हुई। प्रात: ५ बजे मंगल आरती, ७ बजे विशेष पूजा, ९ बजे छात्रावास के बच्चों द्वारा भक्तिसंगीत, १०.३० बजे हवन, ११.३० बजे भोग, ११.३० से १२ बजे तक आश्रम के सचिव स्वामी सत्यरूपानन्द द्वारा मंदिर में प्रवचन, १२ बजे भोगारती, पुष्पांजलि, और १२.३० बजे सबको प्रसाद वितरण किया गया। मंदिर में ६ बजे सन्ध्या-आरती और भजन हुए।

विभिन्न प्रतियोगिताओं का आयोजन

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के सत्संग भवन में प्रतिदिन सन्ध्या ६ बजे विभिन्न प्रकार की प्रतियोगिताएँ आयोजित की गयीं –

९ जनवरी, २०१८ को अन्तर्महाविद्यालयीन विवेकानन्द भाषण प्रतियोगिता का आयोजन किया गया। विषय था – ''**स्वामी विवेकानन्द की कल्पना का भारत और युवा पीढ़ी**''। इस प्रतियोगिता में दुर्गा महाविद्यालय, रायपुर के छात्र योग्मय प्रधान ने प्रथम और शासकीय नागार्जुन स्नातकोत्तर विज्ञान महाविद्यालय, रायपुर के रामू टण्डन ने द्वितीय पुरस्कार प्राप्त किया। इस सत्र की अध्यक्षता मुकुन्द हम्बर्डे जी ने की।

१० जनवरी की अन्तर्महाविद्यालयीन तात्कालिक भाषण प्रतियोगिता थी, जिसमें **'सार्वजनिक सफाई का प्रभाव'** पर शासकीय नागार्जुन स्नातकोत्तर विज्ञान महाविद्यालय, रायपुर की छात्रा कु. नम्रता वर्मा ने प्रथम और **'मेरे विचार से गरीबी उन्मूलन'** पर महन्त लक्ष्मीनारायण दास महाविद्यालय, रायपुर के छात्र विजय बेसरा ने द्वितीय पुरस्कार प्राप्त किया। इस सत्र की अध्यक्षता श्री विनोद कुमार लाल ने की। ११ जनवरी को अन्तर्महाविद्यालयीन वाद-विवाद प्रतियोगिता थी, जिसका विषय था – ''**इस सदन की राय में कोई भी महत् कार्य वाद-विवाद की अपेक्षा सहानुभूति और त्याग से ही सम्पन्न हो सकता है।**'' इसमें शासकीय नागार्जुन स्नातकोत्तर विज्ञान महाविद्यालय, रायपुर की छात्रा कु. नम्रता वर्मा को विषय के पक्ष में प्रथम और दुर्गा महाविद्यालय, रायपुर के योग्मय प्रधान को पक्ष में द्वितीय पुरस्कार मिला। इस सत्र की अध्यक्षता डॉ. चितरंजन कर ने की।

राष्ट्रीय युवा दिवस मनाया गया

१२ जनवरी, २०१८, शुक्रवार को पं. रविशंकर विश्वविद्यालय, रायपुर और विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के संयुक्त तत्त्वावधान में विश्वविद्यालय प्रांगण में 'राष्ट्रीय युवा दिवस' मनाया गया। इसमें शहर की राष्ट्रीय सेवायोजना की इकाई, विवेकानन्द विद्यापीठ के छात्र और अन्य महाविद्यालयों के छात्र-छात्राओं ने स्वामी विवेकानन्द जी को श्रद्धांजलि अर्पित की। प्रशासन भवन के सामने स्वामी विवेकानन्द जी की मूर्ति पर प्रो. शिवकुमार पाण्डेय, डॉ. ओमप्रकाश वर्मा, कुलसचिवजी और नीता वाजपेयी आदि ने पुष्प अर्पित किए। उसके बाद विश्वविद्यालय के प्रेक्षागृह में 'स्वामी विवेकानन्द का जीवन-दर्शन' पर छात्र-छात्राओं ने व्याख्यान दिया। डॉ. ओमप्रकाश वर्मा, सचिव विवेकानन्द विद्यापीठ, कोटा, रायपुर और विवेकानन्द चेयर प्रोफेसर, प्रो. शिवकुमार पाण्डेय, कुलपति पं. रविशंकर विश्वविद्यालय, रायपुर और रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के सचिव स्वामी सत्यरूपानन्द जी ने बच्चों को सम्बोधित किया। लगभग ८०० छात्र-छात्राओं ने भाग लिया।

१२ जनवरी को '**इस सदन की राय में राष्ट्रीय समस्याओं का समाधान अधिकार की अपेक्षा कर्तव्य और सहकार से ही सम्भव है।**' विषय पर अन्तर्विद्यालयीन वाद-विवाद प्रतियोगिता थी। इसमें शिवोम विद्यापीठ, रायपुरा की छात्रा कु. परिधि शर्मा ने विपक्ष में प्रथम और विपक्ष में सन्त ज्ञानेश्वर उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, रायपुर की छात्रा कु. आकृति द्विवेदी ने द्वितीय पुरस्कार प्राप्त किया। इस सत्र

की अध्यक्षता डॉ. गिरीशकान्त पाण्डेय ने की।

१३ जनवरी को अन्तर्विद्यालयीन तात्कालिक भाषण प्रतियोगिता थी। इसमें शिवोम विद्यापीठ, रायपुरा की छात्रा कु. परिधि शर्मा ने **'बढ़ता वैश्विक तापमान चिन्ताजनक'** विषय पर प्रथम और विवेकानन्द विद्यापीठ, कोटा, रायपुर के दिनेश सोनवानी ने **'मनुष्य अपना स्वयं भाग्य निर्माता है'** विषय पर द्वितीय पुरस्कार प्राप्त किया। इस सत्र की अध्यक्षता श्री वशीर हसन जी ने की। १४ जनवरी को अन्तर्विद्यालयीन विवेकानन्द भाषण प्रतियोगिता का आयोजन था। विषय था – **'स्वामी विवेकानन्द की कल्पना का बलशाली भारत'**। इसमें शिवोम् विद्यापीठ, महादेव घाट, रायपुर की परिधि शर्मा ने प्रथम और हॉली क्रास पेन्सन बाड़ा, रायपुर की रिंकी पाण्डेय ने द्वितीय पुरस्कार प्राप्त किया। सत्र की अध्यक्षता रा. गो. भावे जी ने की। १५ जनवरी को 'अन्तर्माध्यमिक शाला विवेकानन्द भाषण प्रतियोगिता' का विषय था – **'मातृभूमि के प्रेमी स्वामी विवेकानन्द'**। इसमें विवेकानन्द विद्यापीठ, कोटा, रायपुर के क्षत्रपाल नेताम ने प्रथम और हॉली क्रास सीनीयर सेकेन्ड्री स्कूल, रायपुर की छात्रा श्रीप्रिया तिवारी ने द्वितीय पुरस्कार प्राप्त किया। इस सत्र की अध्यक्षता डॉ. मीता झा ने की। १६ जनवरी को 'अन्तर्माध्यमिक शाला वाद-विवाद प्रतियोगिता' थी। विषय था – **'इस सदन की राय में प्रकृति के विरुद्ध सतत संघर्ष से ही मानव की प्रगति सम्भव है।'** इसमें विवेकानन्द विद्यापीठ, कोटा, रायपुर के छात्र छत्रपाल नेताम ने विपक्ष में प्रथम और हॉली क्रास सीनीयर सेकेन्ड्री स्कूल, रायपुर की छात्रा श्रीप्रिया तिवारी ने द्वितीय पुरस्कार प्राप्त किया। इस सत्र की अध्यक्षता श्री शैलेष कुमार जाधव ने की।

१७ जनवरी को 'अन्तर्प्राथमिक पाठ-आवृत्ति प्रतियोगिता' थी। इसमें हॉली क्रास पेंशनबाड़ा, रायपुर की छात्रा ट्यूलिप गंगेले ने प्रथम और विवेकानन्द विद्यापीठ, कोटा, रायुपर के छात्र देवराज पैकरा, योगीराज पंकज और शासकीय प्राथमिक शाला बूढ़ापारा की छात्रा मेघा कुम्हार ने द्वितीय पुरस्कार प्राप्त किये। इस सत्र की अध्यक्षता डॉ. प्रीतालाल ने की। सभी प्रतियोगिता-सत्रों का आयोजन एवं संचालन स्वामी व्रजनाथानन्द जी ने किया ।

विवेकानन्द जयन्ती समारोह का उद्घाटन और पुरस्कार वितरण – २४ जनवरी, २०१८ बुधवार को सन्ध्या ६ बजे 'विवेकानन्द जयन्ती समारोह' का उद्घाटन और पुरस्कार वितरण समारोह सम्पन्न हुआ। सभा के मुख्य अतिथि रायपुर सम्भाग के आयुक्त श्री बृजेशचन्द्र मिश्र जी थे। विशिष्ट अतिथि रामकृष्ण मिशन आश्रम, नारायणपुर के सचिव स्वामी व्याप्तानन्द जी, विवेकानन्द विद्यापीठ, कोटा, रायपुर के सचिव डॉ. ओमप्रकाश वर्मा ने छात्र-छात्राओं को सम्बोधित किया। आश्रम के सचिव स्वामी सत्यरूपानन्द जी ने सभा की अध्यक्षता की। विजेता छात्र-छात्राओं को मुख्य अतिथि के करकमलों से पुरस्कार प्रदान किया गया। रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी अव्ययात्मानन्द जी ने आगत अतिथियों का स्वागत किया, मंच संचालन स्वामी देवभावानन्द जी ने तथा धन्यवाद ज्ञापन स्वामी व्रजनाथानन्द जी ने किया।

भजनांजलि – २५ जनवरी, २०१८ को सायं ७ बजे स्वामी राजेश्वरानन्द सरस्वती जी ने आश्रम के नवनिर्मित पांडाल में भजनांजलि प्रस्तुत की।

रामायण प्रवचन – स्वामी विवेकानन्द जयन्ती समारोह के उपलक्ष्य में २६, जनवरी से २ फरवरी २०१८ तक श्रीरामकथा के विख्यात संगीतमय प्रवचनकर्ता मानस मर्मज्ञ स्वामी राजेश्वरानन्द सरस्वती 'श्रीराजेश रामायणीजी' ने आश्रम-प्रांगण के भव्य पांडाल में 'श्रीरामचरित' पर सरस उत्कृष्ट प्रवचन दिया।

श्रीरामकृष्ण देव की जयन्ती मनाई गई – १७ फरवरी, २०१८ को श्रीरामकृष्ण देव की १८३वीं जन्मतिथि मनाई गयी। आश्रम में प्रात:काल से विशेष पूजा, हवन, भजन-संगीत और स्वामी सत्यरूपानन्द जी के प्रवचन हुये।

रामकृष्ण मिशन आश्रम, विशाखापट्टनम् में १ मार्च, २०१८ को ऊटी के स्वामी राघवेशानन्द जी महाराज के कर-कमलों द्वारा 'विवेक इस्टिट्युट आफ एक्सीलेंस' नामक भवन का उद्घाटन किया गया। इस भवन में संस्कृत-शिक्षण-कक्षा, योग और ध्यान, कौशल विकास कार्यक्रम, कम्प्यूटर प्रशिक्षण,आईसीटी नेटवर्क आधारित प्रशिक्षण केन्द्र, सामयिक आवासीय युवा शिविर आदि संचालित होंगे।

छात्रावास–प्रशासनिक सेमीनार का आयोजन

३ फरवरी, २०१८ को छात्रावास-प्रशासनिक सेमीनार का आयोजन रामकृष्ण मिशन, कोयम्बटुर, **रामकृष्ण मिशन, देवघर, इस्टिट्युट आफ कल्चर, कोलकाता और रामकृष्ण मिशन, गोहाटी** में हुआ। प्रत्येक सेमीनार को सह-महासचिवों द्वारा सम्बोधित किया गया। इसमें ५१ आश्रमों के २६ सचिवों और १२७ साधुओं ने भाग लिया। OOO